४९९ स्वर्गीय श्रीमान् सेठ दीपचदजी साहब ।

जन्म विक्रम स १९२३ अवसान स १९७३

भाद्रशुक्ला १४ रविवार । चैत्रशुक्ला १४ ।

चुन्नीलाल जैनग्रथमाला

८

मकरध्वजपराजय ।

(हिंदीभाषानुवाद)

पहिला परिच्छेद ।

जिनके इद्रसरीसे सेनक चतुराननसे वदक हैं
पापरूप वनको कुठार जो मोहकर्म तमभंजक हैं ।
ऐसे सकल सौख्यके दायक श्रीजिनवरपदपद्मोंको
मन वच तनसे करू वदना सदा शुद्धिके सद्मोंको ॥१॥

ऊ च नीच सब प्रकारके मनुष्योंसे मडित महामनोहर एक ससार नामका विशाल नगर है। उसके रक्षणकर्ता अनुपम शक्तिके धारक महाराज मकरध्वज हैं जोकि

---

१ यदमलपदपद्म श्रीजिनेशस्य नित्य
शतमखशतसेव्य पद्मगर्भादिवद्य ।
दुरितवनकुठार ध्वस्तमोहाधकार
तदखिलसुखहेतु त्रिःप्रकारैर्नमामि ॥ १ ॥

समस्त देव देवेंद्र, नर नरेंद्र, नाग नागेंद्र, आदिके वश करनेवाले होनेके कारण त्रैलोक्य विजयी हैं और अतिशय सुदर, महा पराक्रमी, दानी, भोगी, रति और प्रीति दो रानियोंसे मंडित, मोहरूपी प्रधान मत्रीसे युक्त हो, सुखपूर्वक एकछत्र राज्यका पालन करते हैं। एक दिन शल्य कुज्ञान और दुर्लेश्याओंसे मंडित, कर्मदोष आस्रव विषय अभिमान मद प्रमाद निंदितपरिणाम असयम और व्यसन आदि बलवान योधाओंसे भूषित, अनेक नर नरेंद्रोंसे सेवित महाराज मकरध्वज सभाभवनमें राजसिंहासन पर विराजमान थे । उसदिन विशेष राजकाज न होनेसे उ-न्होंने अपने पासमें बैठे हुये प्रधान मत्री मोहसे पूछा--

मत्री मोह ! क्या हमारे राज्य (तीनोंलोक) में कोई अपूर्व घटना होनेका समाचार आया है ? उत्तरमें मोहने कहा--

हा महाराज ! अवश्य आया है परतु यदि आप उसे एका-तमें सुननेका कष्ट उठावें तो बहुत अच्छा हो । क्योंकि--

नरपतिका लघुकार्य भी मध्य समाके आय।
कहना अनुचित विज्ञको, यह सुरगुरु आम्नाय
छै कानोंमें पडा मत्र जल्दी मिदता है
चार कानके बीच रहा वह थिर रहता है।
इसीलिये है विज्ञजनोंको यह शुभ शिक्षा
छै कानोंसे करें मत्रकी वे नित रक्षा ॥

१ अपि स्वल्पतरं कार्यं यद्भवेत् पृथिवीपते ॥
तन्न वाच्य सभामध्ये प्रोवाचेद बृहस्पति ॥
२ षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतु कर्ण स्थिरो भवेत् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णो रक्ष्य एव स ॥

मोहकी यह सयुक्तिक वात सुन मकरध्वज एकातमें चलनेके लिये तयार हो गये और यहा पहुचकर दोनोंमें जो वातचीत हुई वह यह है—

मोह—स्वामिन्! दूत सज्वलनने यह विज्ञप्ति (रिपोर्ट) भेजी है आप इसे लें और पढें

मकरध्वज—(विज्ञप्ति पढ आतुर हो) मोह! जन्मसे लेकर आजतक मैने कभी ऐसी अपूर्व घटना नहिं सुनी इसलिये यह मुझे सर्वथा मिथ्या जान पडती है कि जब मैं तीनों लोकका विजय कर चुका तब उससे बाह्य कोई जिनराज नामका राजा मौजूद है और वह मेरे द्वारा आविजित स्वाधीन है? नहीं! यह कभी सभव नहीं हो सक्ता।

मोह—नहिं कृपानाथ! यह बात सर्वथा सत्य है। सज्वलन कभी झूठ नहिं लिख सकता। वह दूतकर्ममें बडा ही चतुर है। उसे अच्छी तरह मालूम है कि "राजा समस्त देवोंका समुदायस्वरूप होता है इसलिये उसे उत्कृष्ट देव माना जाता है और उसके सामने कभी झूठ नहिं बोला जाता। तथा उत्कृष्ट देव एव राजामें यह विशेषता भी होती है कि देव तो दूसरे भवमें अपराधका फल देता है और राजा इसी जन्ममें शीघ्र ही फल प्रदान करता है।" अस्तु! यदि आप सज्वलनकी बातपर विश्वास न भी करें! तो क्या! आप जिनराजको सर्वथा भूल गये? महाराज! यह वही जिनराज तो है जो आपके ससाररूपी नगरमें रहता था। सदा दुर्गतिरूपी वेश्याके यहा पडा रहता। निरतर चोरी कर्म करता और कालरूपी विकराल कोतवालसे

बाधा मारा जाता था। एक दिन उसे दुर्गतिरूपी वेश्यासे वै राग्य होगया। वह आपके शास्त्ररूपी खजानेमें घुसा, वहासे तीनों लोकमें उत्तम अत्यत हितकारी तीन रत्न लिये, और उसी समय घर स्त्री पुत्र आदिसे सर्वथा विमुख हो, उपशमरूपी अश्वपर सवारी करके विषय और इंद्रियरूपी दुर्जय भटोंसे रोके जानेपर भी न रुका एव शीघ्र ही चारित्ररूपी नगरमें प्रवेश करगया। कृपानाथ! चारित्रनग रमें इस समय पचमहाव्रतरूपी पाच भट रहते हैं। जब उन्होंने देखा कि जिनराज अमूल्य रत्नोंसे युक्त और राज्यके सर्वथा योग्य है तो उन्होंने उसे सप राज्यप्रदान कर दिया इसलिये वह आ जकल शत्रुओंके अगम्य चारित्रपुरमें निष्कटक रूपसे राज्य कर- रहा है। उसके विषयमें यह भी सुननेमें आया है कि उसका मुक्ति कन्याके साथ विवाह होनेवाला है इसलिये समस्त नगरमें बडे ठाटवाटसे उत्सव किया जा रहा है।

मकरध्वज—हा! ऐसा!! अच्छा मोह!!! जरा यह तो बत- लाओ, मोक्षपुरमें जिस कन्याके साथ जिनराजका विवाह होने वाला है वह किसकी कन्या और कैसी है?

मोह—नरनाथ! कन्याके विषयमें क्या पूछना है? कम नीयरूपकी धारक वह कन्या राजा सिद्धसेनकी तो पुत्री है। उसका श्रीमुख, परिपूर्ण षोडश कलाके धारक चद्रमाके समान कमनीय अखडज्ञानकी ज्योतिसे देदीप्यमान है, नेत्र-फूले हुये चचल नीलकमलोंसे ईर्षा करनेवाले विशाल अनतदर्शनके धारक कटाक्ष सयुक्त हैं, अधरपल्लव अमृत रससे पूरित अत्यत मनोहर बिंबा- फलके समान अनतसुखदायी हैं, शरीर नवीन उत्तम चपाके

फूलोंकी मनोहर मालाके समान सुवर्णसदृश कांतियुक्त अनत गुणोंका धारक है, मध्यभाग अविनाशी यौवनसे प्रस्फुटित कठिन कुचकुंभके भारसे नम्र कृश और अनतवीर्यत्वसे भूपित है एव नाभि जघन जानु (घुटने) गुल्फ और चरण आदि सपूर्ण अग उपाग अनुपम नित्यगुणोंसे सयुक्त लावण्यसे परिपूरित शुभ लक्षणोंसे शोभित अवर्णनीय हैं। इसके सिवा महाराज! जिसरूपसे जिनराज और मुक्ति कन्याका आपसमें विवाह हो सके उसरूपसे सुचतुर दूती दया, भरपूर प्रयत्न कर रही है।

मकरध्वज–(मुक्तिवनिताके सौंदर्यका वर्णन सुन लालसा युक्त हो) हा! यह बात! तब तो अवश्य ही उस जिनराजको यम राजका अतिथि बना स्वय मनोहारिणी मुक्तिकन्याका विवाह कर लेना चाहिये यदि मैं ऐसा न करू तो मुझे सहस्रवार धिकार है अच्छा! सैन्यको युद्धकी तयारी करनेका शीघ्र ही हुक्म दो। अथवा (पच बाणको हाथमें उठाकर) सैन्यकी क्या जरूरत है मेरे तीक्ष्ण नोकीले बाणोंकी वर्षा ही उसका काम तमाम कर देगी।

मोह—(सग्रामके लिये उत्कठित मकरध्वजको देखकर) नरनाथ! अपने सैन्यकी पूर्णरूपसे जाच और उसे शत्रुके पराजयकेलिये समर्थ न देखकर सहसा युद्धकेलिये प्रवृत्त होजाना विद्वानोंका काम नहीं क्योंकि जो मनुष्य अपने सैन्यकी सामर्थ्य न जानकर अचानक ही सग्रामकेलिये प्रवृत्त हो जाते हैं वे विना समझे अग्निमें पडे हुये पतगाके समान शत्रुके सम्मुख पडते ही तत्काल नष्ट हो जाते हैं। देखो, जिसप्रकार तेजस्वी भी सूर्य विना किरणोंके शोभित नहिं होता और न जगतमें अपना प्रकाश ही कर सकता

है उसीप्रकार विना भृत्योंके राजा भी प्रजाको अनुग्रह नहिं कर सकता। विना भृत्योंके राजा और विना राजाके भृत्य कार्यकारी नहिं हो सकते इसलिये स्वामी और भृत्योंका आपसमें घनिष्ट संबंध होनेपर ही राजा और भृत्य व्यवहार होता है अन्यथा नहीं। यदि राजा संतुष्ट भी होजाय तो केवल भृत्योंको धन ही प्रदान कर सकता है किंतु भृत्य जब कि वे राजासे जरा भी सन्मानित हो जाते हैं तो उसकेलिये अपनी सर्वस्व संपत्ति प्राण भी न्योछावर कर देते हैं। इसलिये यह बात अच्छीतरह जानकर कि विना भृत्योंके राजाकी शोभा नहीं, राजाको चाहिये कि वह चतुर कुलीन शूर वीर समर्थ भक्त और कुल परंपरासे आये हुये भृत्योंको अवश्य साथमें रक्खे।

महाराज! एक व्यक्तिका नाम बल-सेना नहीं। अनेक व्यक्तियोंके समुदायको बल कहते हैं। लोकमें इस बातको सभी जानते हैं कि एक तृणका नाम रज्जु नहीं किंतु तृणसमूहको रज्जु कहते हैं और उससे हाथी सरीखा बलवान पशु तक भी बांध लिया जाता है इसलिये आप अकेले कुछ नहिं कर सकते जिस समय आप सैन्यके साथ जायगे उसीसमय शत्रुका विजय होगा।

मकरध्वजने मंत्री मोहके उपर्युक्त नीति वचन सुन शांत हो धनुषको रख दिया और "यदि ऐसी ही बात है तो तुम सेनाको तैयारकर शीघ्र आओ। देखो! किसी प्रकारका विलंब न हो।" ऐसा कहकर मोहको सैन्य तैयार करनेकेलिये भेज दिया।

मंत्री मोह आंखोंके ओझल हुआ ही था कि महाराज मकरध्वजको गहरी चिंताने आ घेरा। वे मुक्ति ललनाके लावण्यरस

में अतिलालायित हो गरम २ श्वास खींचते हुये कहने लगे-हा !!

मदमाते गजकुम्भस्थलसम विपुल और कुङ्कुमसे लिप्त
मुक्तिरमाके कुचयुग ऊपर मुख रख रतिसे हो सचुस।
भुजपजरसे वेष्टित हो जब शयन करूगा मैं सुखसे
ऐसा रजनी अतकाल वह कब होगा मम शुभविधिसे॥

जब महाराणी रतिने चचलचित्तके धारक शोकरूपी मकर ज्वरसे पीडित, क्षीणशरीरी, महाराज मकरध्वजको देखा वे बडी दु खित हुईं और अपनी सपत्नी किंतु प्रियसखी प्रीतिसे इसप्रकार कहने लगीं--

"प्रिय सखी प्रीति !! क्या तुम्हें मालूम हे हमारे जीवनाधार महाराज आज अत्यत चचल और गहन चिंतासे जकडे हुये क्यों दीख पडते हैं !" उत्तरमें प्रीतिने कहा--

नहीं, प्रियसखी! मैं निश्चयसे नहिं कहसकती कि प्राणनाथकी ऐसी अवस्था कैसे होगई। शायद कोई राजकाज आ अटका होगा हमैं उसके जाननेसे क्या लाभ ?" प्रीतिकी इसप्रकार उपेक्षा देख रतिसे न रहा गया वह बोली--

नहीं नहीं प्यारी सखी! प्रीति! तुम्हारा ऐसा कहना सर्वथा भूल है। याद रक्खो! जीवनसर्वस्व स्वामीके विषयमें इसप्रकारकी उपेक्षा करना पतिधर्ममें बट्टा लगाना हे।

प्रीतिने रतिके युक्त वचनसे मनमें कुछ लज्जित हो कहा-प्यारी सखि रति! यदि ऐसा ही है तो तुम्हीं प्राणनाथसे यह बात पूछो शीघ्र असली हालका पता लग जायगा।

---

१ मत्तेभकुंभपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे तस्याः पयोधरयुगे रतिखेदखिन्न।
वक्त्रं निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती शेष्ये कदा क्षणमहं क्षणदावसाने॥१६॥

इसप्रकार सखी प्रीतिसे सलाह कर महारानी रतिने वैसा ही किया। वह एक दिन रात्रिके समय जबकि महाराज अपने शय नागारमें मनोहर सेजपर शयन कर रहे थे, धीरेसे उनके पास पहुची और जिसप्रकार पर्वतादिनी पार्वती महादेवका आलिंगन करती है, इद्राणी इद्रका, गगा समुद्रका, सावित्री ब्रह्माका, लक्ष्मी श्रीकृष्णका, रोहिणी चद्रमाका ओर देवी पद्मावती नागेंद्रका आ-लिंगन करती है, महाराजके शरीरसे लिपट गई और अनुनय विनय हो चुकनेके बाद दोनों में इसप्रकार बात चीत होने लगी–

रति–मेरे प्राणाधार जीवनसर्वस्व! आपकी यह क्या दशा होगई है? जिससे न आपको आहार अच्छा लगता है न रात्रिमें भरपूर निद्रा आती है और न राज्यकी ही कुछ चिंता रही है। कृपाकर बता इये आपकी इस शीर्ण अवस्थाका प्रधान कारण क्या है? प्राणेश! यदि कोई सामान्य मनुष्य किसी बातकी चिंता करता तो युक्त भी होता परतु आप भी चिंताकी लपेटमें लिपटे हुये व्यथित हो रहे हैं यह बडा आश्चर्य है क्योंकि ससारमें न तो ऐसा कोई जीव है जिसे आपने जीत न लिया हो, न कोई ऐसी स्त्री है जिसका आपने रसास्वादन न किया हो, न कोई ऐसा मनुष्य ही दृष्टि गोचर होता है जो आप की सेवासे बाह्य हो–आपकी सेवा न करना चाहता हो! फिर न मालूम आपकी इस अचिंत्य चिंताका कारण क्या है?

मकरध्वज–प्रिये! तुम्हें इसबातके पूछनेसे क्या लाभ? क्यों व्यर्थ तुम मेरी चिंताका कारण जाननेकेलिये आग्रह करती हो? तुम निश्चय समझो जो चिंता मेरे हृदयमें अटलरूपसे समागई है वह विना पूर्ण हुये नहीं निकल सक्ती ओर उसका तुमसे पूर्ण होना सभव नहीं।

मकरध्वज-प्रिये ! तुम्हारा कहना सर्वथा युक्त है। मोहको भी यह बात अज्ञात नहीं वह भी खुलासारूपसे जानता है। मैंने उसे समस्त सेनाके तयार करनेकेलिये आज्ञा दी है और तुमसे भी यह आग्रह है कि जब तक मोह, समस्त सेनाको तयार कर न आ पावे उसके पहिले ही तुम मुक्तिकन्याके पास जाओ और जिसरूपसे वह मुझे अपना जीवनसर्वस्व बनावे उसरूपसे पूर्ण उद्योग करो क्योंकि-

लक्ष्मी उद्योगी पुरुषको ही प्राप्त होती है आलसियोंको नहीं किंतु जो पुरुष आलसी होकर अपने भाग्यका ही भरोसा रखते हैं वे पुरुष निंदित हैं, कायर हैं। इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे भाग्यकी कुछ भी पर्वाह न कर आत्माकी समस्त शक्ति व्ययकर पुरुषार्थ करें। यदि पुरुषार्थसे कार्य सिद्ध न हो तब भी कोई दोष नहीं। क्योंकि देखो-

जिसके रथमें केवल एक तो चक्र है सात घोडे हैं कटकाकीर्ण मार्ग है और एक चरणरहित अनूरु सारथि है तथापि वह सूर्य प्रतिदिन अपार आकाशके मार्गको तय करता है। इसलिये यह बात स्पष्ट रूपसे जान पडती है कि महापुरुष पराक्रमसे ही कार्यकी सिद्धि करते हैं दैवके भरोसे नहिं बैठे रहते। अतमें तुमसे मेरा यही कहना है कि तुमने मेरे हृदयका असली हाल जाननेके लिये अत्यत आग्रह किया था इसलिये मैंने बतला दिया यदि इस मेरे कच्चे हालको जानकर भी तुम मेरा पीडाके दूर करनेका उपाय न करोगीं तो याद रक्खो तुम पतिव्रता नहिं कही जा सकतीं-तुम्हारे पतिव्रत धर्ममें बट्टा लग जायगा।

रति–प्राणनाथ! यह बात ठीक है। परन्तु क्या यह आपको उचित है! क्या कोई अपनी प्रियाको दूती बनाकर अन्य स्त्रीके पास भेजता है-क्या दूतीका कार्य करनेवाली भार्या विद्वानोंके प्रशंसायोग्य बन सकती है! कभी नहीं!!

मकरध्वज–सुंदरी! जो तुम कहती हो वह सर्वथा युक्त है और ऐसा ही होना चाहिये। परन्तु यह कार्य ऐसा है कि विना तुम्हारी सहायताके सिद्ध नहिं हो सकता क्योंकि स्त्रियोंको स्त्रियां ही विश्वास करा सकती हैं। देखो–

> १मृगी मृगकी मृगमें प्रीती रमणीकी रमणीके संग
> अश्व प्रीति अश्वहिमें करता मूरख जन मूरखके संग।
> जो होते हैं ज्ञानवान नर उनके प्रीतिपात्र ज्ञानी
> इसीलिये सम शील व्यसनके पुरुषोंमें प्रीती मानी॥

अर्थात्–मृग मृगोंके साथ समागम अच्छा समझते हैं स्त्रियां स्त्रियोंके साथ, अश्व अश्वोंके साथ, मूर्ख मूर्खोंके साथ और विद्वान् विद्वानोंके साथ सहवास करना उत्तम मानते हैं ठीक भी है जिनका स्वभाव और व्यसन (विपत्ति) समान होते हैं उन्हींकी आपसमें मित्रता हो सकती है।

रति–(मनमें कुछ चिंतित होकर) स्वामिन्! आपका कहना सर्वथा ठीक है, मैंने माना। परन्तु यदि–

शार्दूलविक्रीडित।

> २कार्योंमें शुचिता सुसत्यगुणता हो ज्यारियोंमे यदा

---

१ मृगैर्मृगाः सङ्गमनुव्रजन्ति स्त्रियोऽङ्गनाभिस्तुरगास्तुरंगैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः समानशीलव्यसनेषु सख्यं॥ २४॥

२ कार्ये शौचं व्रतकारेषु सत्यं सर्वे क्षांतिं क्षाप्तु कामोपचारान्।
क्षीणे धैर्यं मत्प्रिये सत्त्वचिंता यथैव स्यात्तद्वदेतत्सिद्धिरामा॥ २५॥

सर्पोंमें समता अनगदामता स्त्रीजगमें सर्वदा।
क्लीबोंमें धृतिता सुतत्त्वरचिता हो मद्यपोंमें, तदा
हो सक्ती वह प्राप्त मुक्तिरमणी अत्यंत कल्याणदा॥

अर्थात् जिसप्रकार कार्कोंमें पवित्रता, जूआ खेलनेवालोंमें सत्यता, सर्पोंमें क्षमा, स्त्रियोंमें कामकी उपशांति, नपुंसकोंमें (हीजड़ों) में धीरता और मद्य पीनेवालोंमें तत्त्वचिंता आदिका होना असंभव है उसीप्रकार आपको मुक्तिरमणीका मिलना भी असंभव है। और भी नाथ! इसके सिवा यह बात है-

दोहा।

रामा इंद्रिय शस्त्र सुत, अरु रागादि विकल्प।
यदि हैं नरके तो वृथा मुक्तिरमासंकल्प॥

अर्थात्-जो पुरुष स्त्री शस्त्र इंद्रिया पुत्र आदि और राग द्वेष आदिसे कलंकित हैं, सदा दूसरोंका अपकार उपकार किया करते हैं मुक्तिरमा उनके पास भी नहीं फटकती। इस लिये कृपानाथ! आपका आर्तध्यान करना व्यर्थ है-मुक्तिरमाके लिये जो आप प्रतिसमय आर्तध्यान करते रहते हैं उससे आप को कोई फल नहिं प्राप्त हो सकता क्योंकि शास्त्रमें कहा है-

"मनुष्योंको व्यर्थ आर्तध्यान न करना चाहिये क्योंकि आर्त ध्यानसे उन्हें तिर्यंच योनिका बंध होता है। इसी आर्तध्यानके कारण हेमसेन नामका मुनि मरकर खरजामें कीटकपर्यायका धारक तिर्यंच हुआ था।

मकरध्वज-प्रिये! सो कैसे?

---

१ ये स्त्रीशस्त्राक्षसुताद्यै रागाद्यैश्च कलंकिता।
निग्रहानुग्रहपरा सा सिद्धिस्तान्न गच्छति॥ २७॥

रति–सुनिये कृपानाथ! मैं सुनाती हूँ–

इसी पृथ्वीपर एक चंपा नामकी नगरी है जो नाना प्रकारके उत्सवोंसे व्याप्त, उत्तमोत्तम जिनेंद्र भगवानके मंदिरोंसे मंडित, उत्तम धर्मके आचरण करनेवाले श्रावकोंसे परिपूर्ण, चारोंओर सघन और हरी भरी वृक्षराजिसे भूषित, समस्त भूमिखंडोंपर सानंद विहार करती हुई उत्तमोत्तम रमणियोंसे रमणीक, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णोंके गुणोंमें प्रेम करनेवाले शूद्रजनोंसे युक्त, अनेक देशोंसे आये हुये विदेशी छात्रों और निर्मल ज्ञानके धारक सैकडों उपाध्यायोंसे अलंकृत एवं अनेक पुरवासी रमणियोंके मुखरूपी चंद्रमाकी मनोहर चांदनीसे देदीप्यमान वसुधारूपी मनोहर मालाको धारण करनेवाली है। उसी चंपापुरीमें एक हेमसेन नामके मुनि किसी जिनालयमें उग्र तपश्चरण करते हुये निवास करते थे। कुछ समयके बाद जब कि उनका मरणकाल समीप रह गया तब पुरवासी श्रावकोंने जिनालयमें आकर अनेक उत्तमोत्तम पुष्प और फलोंसे भगवान जिनेंद्रकी आराधना पूजा की। पूजाके बाद प्रतिमाके सामने पका हुआ मनोहर मिष्ट सुगंधिसे व्याप्त एक खरबूजेका फल चढाया। फलकी मनोहर सुगंधिसे मुनिराज हेमसेनका चित्त चलित होगया और "वह मुझे कैसे प्राप्त हो" इस तीव्र आर्तध्यानसे मरकर वे उसी खरबूजेमें जाकर कृमि हुये।

उसी जिनालयमें अवधिज्ञानके धारक एक मुनिराज चंद्रसेन भी विराजमान थे। मुनि हेमसेनका शरीर संस्कार पूर्णकर दूसरे दिन जब श्रावक जिनालयमें आये तो वे मुनिराज चंद्रसेनसे विनम्र हो यह पूछने लगे–

महाराज ! मुनिराज हेमसेनने मरणपर्यंत इस चैत्यालयमें उग्र तप किया था। कृपाकर कहिये तपके प्रभावसे वे इस समय किस गतिमें गये हैं ?

मुनिराज त्रिकालज्ञ थे, श्रावकोंके प्रश्नसे उन्होंने अपने दिव्यज्ञान (अवधिज्ञान) की ओर उपयोग लगाया और वे ऊर्ध्वलोक एव पाताललोकमें उनका पता लगाने लगे। जब वहा कहीं भी पता न लगा तो उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मध्यलोकमें अपना उपयोग लगाया और यह स्पष्टरूपसे जानकर कि "मुनि हेमसेन जिनेंद्रभगवानके चरणोंमें चढाये गये खरबूजेकी भासिके आर्तध्यानी होकर मरे हैं इसलिये वे उसीमें आकर कीडा हुये हैं" श्रावकोंसे कह दिया। मुनि चद्रसेनके वचनोंसे श्रावकोंको बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने शीघ्र ही खरबूजेके टुकडे किये और उसमें कीडेको देखकर पुन मुनिराजसे पूछा-

दयासागर ! मुनि हेमसेनने तो उग्र तप किया था फिर ऐसा गतिबध उन्हें कैसे हुआ ? उत्तरमें मुनि चद्रसेनने कहा-

यह बात ठीक है-अवश्य मुनि हेमसेनने उग्र तप तपा था परतु ध्यानका फल प्रधान होता है। उन्होंने आर्तध्यान किया था इसीलिये उन्हें खरबूजेमें कृमि होना पडा। क्योंकि-

आर्तध्यानसे दुरत तिर्यंच। रौद्रध्यानसे नरक प्रपच।
धर्म्यध्यानसे मिलता स्वर्ग। शुक्लध्यान देता अपवर्ग॥[1]

अर्थात्-आर्तध्यानसे तिर्यगगति, रौद्रध्यानसे नरक गति,

---

1 आर्ते च तिर्यग्गतिराहुराद्या रौद्रे गति स्यात्खलु नारकी च॥
धर्म्ये भवन् देवगतिनराणा ध्याने च जन्मक्षयमाशु शुक्ले॥ २८॥

धर्मध्यानसे देवगति और शुक्लध्यानसे निराकुलतामय सुखस्वरूप मुक्ति प्राप्त होती है।

मुनिराजके मुखसे आर्त रौद्र ध्यानोंका फल सुन श्रावकोंको उनके स्वरूप जाननेकी उत्कंठा हुई इसलिये वे मुनिराजसे कहने लगे—

भगवन्! आर्तध्यान, रौद्रध्यान धर्म्य ध्यान और शुक्ल-ध्यान क्या पदार्थ हैं? कैसा उनका स्वरूप है कृपाकर खुलासारूपसे बतलाइये? उत्तरमें मुनिराज चारों ध्यानोंका इसप्रकार वर्णन करने लगे—

वस्त्र, सेज, रमणी, हीरादिक रत्न, राज्य उपभोगोंकी
उत्तम पुष्प, ग्रथ, शुभभूषण पिच्छिकादि उपकरणोंकी।
वाहन आसनादिकी भी जो लोलुपतासे अज्ञानी
सदाकाल अभिलाषा करता वह होता आर्तध्यानी॥[1]

अर्थात्—जो पुरुष वस्त्र सेज स्त्री रत्न राज्य भोगोपभोग उत्तम पुष्प उत्तम गंध शुभभूषण पिच्छिका आदि उपकरण घोडा बग्घी रथ आदि सवारी और आसन आदि पदार्थोंकी सदा अभिलाषा करता है-सदा यही विचार करता रहता है कि उत्तम वस्त्र सेज स्त्री आदि पदार्थ मुझे कैसे प्राप्त हों उस पुरुष-के आर्त-पीडासे होनेवाला ध्यान अर्थात् आर्तध्यान होता है।

अन्य प्राणियोंके ज्वालनमें मारन छेदन बाधनमें
होता जिसके हर्ष बहुत ही तथा उन्हींके ताडनमें।
तथा व्यसन भी अघसंचयका, सदा नहीं अनुकंपालेश
जिसके वह नर रुद्रध्यानका धारी, यह मुनिजन उपदेश।[2]

---

१ वसनशयनयोषिद्रत्नराज्योपभोगप्रवरकुसुमगंधानेकसद्भूषणानि।
सदुपकरणमन्यद्वाहनान्यासनानि सततमिति य इच्छेद् ध्यानमार्तं तदुक्तं ॥२१॥

२ दहनहननबधच्छेदनैस्ताडनाद्यैः प्रभृतिभिरिह यस्योपैति तोषं मनश्च।
व्यसनमति सदापे नानुकम्पा कदाचिन्मुनय इह तदाहुर्ध्यानमेव हि रौद्रं।

अर्थात्-जो मनुष्य जलाना मारना बाधना छेदना ताडन करना आदि कार्योंके करनेमें सदा हर्ष मानता है, पाप करनेका जिसको व्यसन पड गया है और जग भी हृदयमें दया नहिं रखता वह रौद्रध्यानी कहा जाता है ऐसा मुनियोंका मत है ।

हो श्रुत गुरुभक्ती प्राणियोंपे दया हो
स्तुति यम अरु दानोंमें भि हो तीव्रराग ।
मनहि न परनिंदा इंद्रिया होंय वश्य
यदि, तब वह, शास्त्रोंने कहा धर्म्य ध्यान ॥

अर्थात्-भगवान जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित शास्त्रोंमें और गुरुओंमें अचिंत्य भक्ति सदा समस्त जीवोंपर दयाभाव, स्तुति नियम और दानमें अनुराग, परकी निंदा न करना, और इंद्रियोंको वश रखना धर्म्यध्यान है ऐसा हितोपदेशी भगवान सर्वज्ञका उपदेश है ।

जिसकी इंद्रिय विषय विरक्त, जो निश्चल निजमें अनुरक्त ।
जिनके निर्मल आतमका ध्यान, उन मुनिके है शुक्ल सुध्यान ॥

अर्थात् समस्त इंद्रियोंकी अपने २ विषयोंसे विरक्ति, आत्मामें किसीप्रकारके विकल्पका न उठना और शुद्ध हृदयमे परमात्माके स्वरूपका चिंतवन करना मुनियोंने शुक्लध्यान बतलाया है ॥

इसप्रकार यह चारों ध्यानोंका सक्षेपसे स्वरुप कह दिया

१ श्रुतगुरुभक्ति सर्वभूतानुकंपा स्तवननियमदानेष्वस्ति यस्यानुराग ।
मनसि न परनिंदा त्विंद्रियाणां प्रशान्ति कथितमिह हितज्ञैर्ध्यानमेव हि धर्म्यं ।
२ खलु विषयविरक्तानींद्रियाणीति यस्य सततममलरूपे निर्विकल्पेऽव्यये य
परमहृदयशुक्लध्यानतल्लीनचेता यतय इति वदति ध्यानमेव हि शुक्लं ।

गया। इसमें जो ध्यान मरणसमयमें रहता है उसीके अनुकूल गति मिलती है क्योंकि शास्त्रका वचन है—

मरणके समयमें जीवका जैसा ध्यान रहता है उसीके अनुकूल गतिबंध होता है श्रेष्ठी जिनदत्तके मरते समय अपनी भार्याका आर्तध्यान था इसलिये वह (अपने घरकी वावडीमें ही) मैढक हुआ था। मुनिराजके मुखसे जिनदत्तका मैढक होना सुन श्रावकोंने फिर आश्चर्यपूर्वक नम्र हो निवेदन किया—

भगवन्! यह कैसे? उत्तरमें मुनिराजने कहा—

राजगृह नगरमें एक जिनदत्त नामका सेठ जोकि भगवान जिनेंद्रके परमपावन चरणकमलोंके भक्तिरसके आस्वादनमें लीन भ्रमर था, रहता था। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था और वह अपने कमनीयरूपसे इंद्राणीका तिरस्कार करनेवाली परमरूपवती थी। निरंतर गृहस्थ धर्मका आचरण करते २ कदाचित् जिनदत्तका मृत्युकाल समीप आगया। उसके प्राणपखेरू उडना ही चाहते थे कि अचानक ही उसकी दृष्टि अपनी स्त्री जिनदत्ता पर पडी और उसके अनुपम लावण्यको देखकर कामसे पीडित हो वह मनही मन इसप्रकार विचारने लगा—हा!

"है जो स्त्री अति सुंदरी गुणवती संसारमें सौख्यदा
बोलीमें मधुरा विलासकुशला सो छूटती आज हा!

एषा स्त्री सुमनोहरातिसुगुणा संसारसौख्यप्रदा
वाड्माधुर्ययुता विलासचतुरा भोक्तुं न शीघ्रं मया।
दैवं हि प्रतिकूलता गतमलं धिग् जन्म मेऽस्मिन्भवे
यत्पूर्वं खलु दुस्तरं कृतमघं दृष्टं मयैतद् ध्रुवं॥

हुआ निश्चय देव रुष्ट मुझसे धिक्कार हा जन्म है ।"
कीया अर्जन पाप जो प्रथम मैं देखा यहा स्पष्ट है ।

देखो! यह स्त्री अत्यत मनोहर, नाना प्रकारके गुणोंसे भूषित, ससारका अनुपम आनद प्रदान करनेवाली, सदा मीठे वचन बोलनेवाली और नाना प्रकारके हाव भावोंमें चतुर है परतु आज दुर्भाग्यसे मेरा इससे वियोग हुआ जाता है इसलिये मेरे इस जन्मको धिक्कार है। हाय! जो मैंने पूर्वभवमें घोर पाप किया था उसका यह प्रत्यक्ष फल देख लिया।

यद्यपि यह ससार असार है परतु इसमें भी शीतजल चद्रमा चदन मालती पुष्पमाला और क्रीडापूर्वक रमणीके मुखका अवलोकन करना अवश्य सार है।"

बस! ऐसा विचार करते करते जिनदत्तकी पर्याय पूरी हो गई और मरकर उक्त आर्तध्यानसे घरके आगनकी वावडीमें मेंढक उत्पन्न हुआ।

कुछ दिनके बाद उसी वापीमें जल लेनेकेलिये जिनदत्ता गई उसे देखते ही मेंढकको जातिस्मरण होगया। वह उसके सामने उछल कूद करने लगा। किंतु जिनदत्ताको उसके उछलकूदसे बडा भय हुआ इसलिये वह शीघ्र ही अपने घरमें घुसआई। इसीप्रकार वह जब जब वापीपर जाती तो उसमें मेंढककी उछलकूद देखकर वापिस लौट आती थी।

कदाचित् जहा तहा विहार करते २ मुनिराज गुणभद्राचार्य पाचसो मुनियोंके साथ यहा आये और राजगृहनगरके बाह्य उद्यानमें आकर विराज गये। मुनिराजके आगमनमात्रसे ही वन-

की अपूर्व शोभा हो गई । जो अशोक कदंब आम्र बकुल और खजूर आदिके वृक्ष सखे पड़े थे वे उनके माहात्म्यसे फले फूले हो गये और उनपर छोटी बडी शाखायें लहलहा निकलीं एवं कोकिलायें अपना मधुर २ आलाप आलापने लगीं । जो तडाग बावडी आदि जलस्थान जलके अभावसे शुष्क पड़े थे वे देखते २ ही लबालब पानीसे भर गये और उनपर राजहंस मयूर आदि पक्षी सानंद क्रीडा करने लगे । जो जातिवृक्ष चंपक पारिजात जपा केतकी मालती और कमल मुरझाये पड़े थे वे तत्काल विकसित होगये और भ्रमरगण उनकी सुगंधि तथा रसका पानकर मधुर झंकार शब्द करने लगे और जो गोपियां वसंत ऋतुके अभावसे निःशब्द थीं वे जहां तहां अपनी २ सुरीली आवाजसे कानोंको अतिशय प्रिय गान गाने लगीं ॥ वनको अचानक ही इसप्रकार फूला फला देख वनपालके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । वह बार बार विचारने लगा-क्या मुनिराजके प्रभावसे इस वनकी यह अदृष्टपूर्व शोभा हुई है ? वा इस क्षेत्रका कोई बलवान अनिष्ट होनेवाला है ? जिससे ये प्रथम ही उसके चिह्न प्रगट होगये हैं अस्तु, जो हो ! परंतु मुझे सूचनाकेलिये यहांके कुछ फल लेकर राजाके पास अवश्य जाना चाहिये ऐसा विचारकर उसने कुछ फल तोड लिये और उन्हें महाराजको दिखानेकेलिये राजगृहनगर की ओर चल दिया ।

राजसभामें पहुंचकर वनपालने महाराजको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और असमयमें होनेवाले जो फल वह लेगया था वे भेंट किये । वनपालको असमयके फल लाया देख महाराजको भी बडा आश्चर्य हुआ । वे चकित हो उससे पूछने लगे—

रे वनपाल ! इन फलोंका यह समय तो नहीं है फिर अ समयमें ये फल कैसे ? उत्तरमें वनपालने कहा--

कृपानाथ ? बडा आश्चर्य है ? कृपाकर सुनिये मैं कहता हू--पाचसौ मुनियोंके सघसे वेष्टित मुनिराज गुणभद्र वनमें आये हैं। उन्होंने जिसक्षणसे उद्यानमें प्रवेश किया है उसी क्षणसे उद्यानके वृक्ष भांति २ के पुष्प और फलोंसे लदबदा गये हैं एव वहाकी एक विचित्र ही शोभा होगई है।

वनपालके इसप्रकार वचन सुनकर नरपाल तत्काल सिंहासनसे उठे और जिस दिशामें मुनिराज विराजे थे उसी दिशामें सात पेंड चलकर भक्तिभावसे परोक्ष नमस्कार किया एव अत पुर और परिवारको साथ ले शीघ्र ही मुनिवदनार्थ चल दिये। राजाको मुनिवदनाके लिये बडे ठाट बाटसे जाते देख मुनियोंके आगमनकी सूचनाका नगरमें कोलाहल मच गया और अनेक श्रावक तथा जिनदत्ता आदि श्राविकायें उन मुनिराजकी वदनाकेलिये चल दीं। क्रमश चलते २ सब लोग मुनिराजकेपास पहुचे और उनकी तीन प्रदक्षिणा दे अत्यत भक्तिसे नमस्कारकर भूमिपर बैठ गये।

राजगृहनिवासी अनेक सज्जन मुनिराजसे वैराग्यकी प्रार्थना करने लगे, अनेक मुनिदर्शनसे अपनेको धन्य धन्य कहने लगे, और अनेक भूत भविष्यत् वर्तमानकालके वृत्तांतोंको जाननेकी आकांक्षा प्रकट करने लगे। इसी अवसरपर सेठ जिनदत्तकी स्त्री जिनदत्ता भी मुनिराजके समीप आई और योग्य आसनसे बैठकर प्रणाम पूर्वक इसप्रकार निवेदन करनेलगी--

"भगवन् ! कृपाकर कहें ! मेरे प्राणनाथ किस गतिमें जाकर

उत्पन्न हुये है? जिनदत्ताका वचन सुन अपनी दिव्यदृष्टिसे मुनि-राजने जिनदत्तका पता लगाया और उसे मैंढक हुआ जान कहा--

पुत्री! जिनदत्तकी गतिका तो पता है परतु कहनेके योग्य नहीं है। उत्तरमें जिनदत्ताने निवेदन किया-

भगवन! आप क्यों वृथा असलीहालके बतानेमें सकोच कर रहे हैं! स्वामिन्! इसका नाम तो संसार है इसमें उत्तम भी अधम हो जाते हैं और अधम भी उत्तम। इसलिये सकोच करना निरर्थक है। मुनिराजने कहा--

"पुत्री! यदि ऐसा है तो सुनो-तुम्हारा पति मैंढक हुआ है और वह तुम्हारे घरकी वापीमें रहता है।" मुनिराजके ऐसे वचन सुन जिनदत्ताको बडा आश्चर्य हुआ। वह मनमें यह विचार कर कि-'मुनिराजका कथन सर्वथा सत्य है वापीपर पहुचते ही जो मैंढक प्रतिदिन मुझे देखकर उछलता कूदता है वह अवश्य मेरा स्वामी होना चाहिये' फिर मुनिराजसे बोली-

"भगवन्! मेरा स्वामी तो पूर्णरूपसे इंद्रियोंका वश करनेवाला, कृतज्ञ, विनयी, क्रोधादि कषायोंका दमन करनेवाला, सदा प्रसन्न, सम्यग्दृष्टि, महापवित्र जिनेंद्र भगवानके वचनोंपर श्रद्धा रखनेवाला, उत्तम परिणामोंका धारक, देवपूजा गुरुसेवा स्वाध्याय सयम तप और दान इन छै आवश्यक कर्मोका सदा करनेवाला, व्रत शील आदिसे युक्त, मक्खन मद्य मास मधु ऊमर कठूमर आदि पाच उदुबर, अनत जीवोंके धारक फल पुष्प आदि रात्रिभोजन कच्चे गोरसमें साने विदल भोजन, पुष्पित चावल और दो दिनके बने हुये आदि भोजनोंका त्यागी, अहिंसादि पा-

च अणुव्रतोंका भलेप्रकार पालन करनेवाला, पापसे भयभीत और दयावा सागर था फिर वह मेंढक जातिका तिर्यंच कैसे होगया ?"
जिनदत्ताकी यह युक्त शका सुनकर मुनिराजने कहा—

"पुत्री ! तूने जो, कुछ कहा वह सब सत्य है परतु सुन— श्रावकके व्रत धारण करनेपर भी अतसमयमें जीवके जैसे परिणाम रहते है उन्हींके अनुसार गतिबध होता है यह टल नहिं सकता। मरते समय तेरे पति जिनदत्तके तेरा आर्तध्यान होगया था इसलिये उस आर्तध्यानके कारण और ज्वरकी पीडापूर्वक मरनेसे उसे अपनी वापीके अदर मेंढक होना पडा।" मुनिका यह उत्तर सुन जिनदत्ताने फिर पूछा -

महाराज ! सुखकी प्राप्तिके लिये जप तप किया जाता है यदि उसके करनेपर भी सुख न मिला तो जप तप सयम आदि कार्योंका करना ही व्यर्थ है ?

जिनदत्ताके इन मुग्ध वचनोंसे थोडा हसकर उत्तरमें मुनि बोले-*नहीं पुत्री ! जप तप आदि कार्योंका आचरण करना व्यर्थ नहीं,* अवश्य उनसे शुभगति और उत्तमसुख आदिकी प्राप्ति होती है परतु यह अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि अत समयमें यदि जीवके शुभ भाव रहेंगे तो नियमसे उसे शुभगति और उत्तम सुखकी प्राप्ति होगी और यदि अशुभ रहेंगे तो अशुभ गति और दु ख भोगना पडेगा। परतु हा ! कुछ समय बाद अशुभ गतिका दु ख भोगकर और पुन शुभगतिमें जाकर वह अवश्य सुख भोगेगा क्योंकि स्थितिमें कमी वेशी हो सकती है गतिबध नहिं टल सकता। तू निश्चय समझ ! तेरा पति जिनदत्त कुछ समय

यथा अग्निकी समिधिपर्गसे उदधीनी सरितागणसे
तृप्ती महा असम्भव मानी तथा रमानी नरगणसे ॥
जो होती स्वभावसे वचक निर्दय चचल दुश्शीला
वह रमणी फ्त्र हो सकती है मानवगणको सुखशीला।
जिसका कथन अन्य ही होता मनका अन्यरूप व्यापार
करती अन्य क्रिया जो तासे उस वनितासे दुःख अपार ॥
सेवन करती वह कुशील नित खोती कुलमर्यादा मान
पिता आदिकी कीर्तिलताका भी नहिं रखती कुछ भी ध्यान।
देव दैत्य अहि व्याल आदिक कार्यज्ञानमें भी पडित
रमणीके चरित्रवणनमें होजाते महसा खडित ॥
सौख्य दुःख जय जीना मरना आदि ज्ञानके भी भडार
रमणीके असली चरित्रका जरा नही पासकते पार ॥
विस्तृत भी जलधीके तटपर पोत, गगन सीमा तारे
जाते पहुच, किंतु रमणीके चरित ज्ञानमें सब हारे।

हृद्गत चिंतयत्यन्य न खाणामेकता रति ॥
नाग्निस्तृप्यति काष्ठौघनापगानां महोदधि ।
नातक सर्वभूताना न पुसां वामलोचना ॥
वचकत्व नृशसत्व चचलत्व कुशीलता।
इति नैसर्गिका दोषा यासां ता सुखदा कथ ॥
वाचि चान्य मनस्यन्यत्क्रियायाम यदेव हि।
यासां साधारण स्त्रीणां ता कथ सुखहेतव ॥
विचरंति कुशीलेषु लघयति कुलक्रम।
न स्मरंति गुरु मित्र पतिं पुत्र च योषित ॥
देवदैत्योरगव्यालग्रहचद्राकचेष्टित।
जानयति महाप्राज्ञास्तेऽपि वृत्त न योषिता ॥
सुखदु खजयपराजयजीवितमरणानि ये विजानन्ति ॥
मुह्यंति तेऽपि नून तत्त्वविदश्चरिते स्त्रीणां ॥
जलधेर्यानपात्राणि प्रहाया गगनस्य च।

व्याध व्याघ्र केहरि हाथी नृप भी नहिं करते वह अपकार
करती निरंकुशा रमणी जो निर्दय हो दुखका भंडार ॥

शार्दूलविक्रीडित

जो रोतीं अरु अट्टहास्य हसतीं हैं द्रव्यके लोभसे
जो विश्वास करैं न अन्य जनका पै हैं करातीं उसे।
ऐसी निंदित नारियां बुधजनोंको त्यागनी सर्वदा,
प्रेतोंके थलपै परीं मटकियोंके तुल्य, दुखप्रदा।

अर्थात् स्त्रिया बात किसी औरके साथ करती हैं, कटाक्षोंको चलाकर देखती किसी औरकी ओर हैं, मनमें कोई दूसरा ही विचार करतीं हैं इसलिये इनका किसी एकपर प्रेम नहिं होता। जिसप्रकार बड़ेमें बड़े काष्ठके ढेरोंसे अग्निकी, अगणित नदियोंसे समुद्रकी, समस्त प्राणियोंके मिलनेपर भी यमराजकी तृप्ति नहिं होती उसीप्रकार बहुतसे भी मनुष्योंसे स्त्रिया तृप्त नहिं हो सकतीं। जिनमें ठगना निर्दयपना चचलता और कुशीलता आदि कुत्सित भाव, स्वभावसे ही रहते हैं वे स्त्रिया कैसे सुख देनेवाली हो सकतीं हैं? कभी नहीं। जो स्त्रिया स्वभावसे ही बोलती कुछ और हैं, मनमें कुछ और विचारती हैं और शरीरसे कुछ और ही चेष्टा करतीं हैं वे स्त्रिया कभी सुखका कारण नहिं हो स-

---

यांति पारं न तु क्षीणा दुश्चरित्रस्य केचन ॥
न तु क्षुद्रहरिव्याघ्रव्यालद्विपनरेश्वरा ।
कुर्वंति यत्करोत्येका नरं नारी निरंकुशा ॥
एता हसंति च रुदंति च वित्तहेतो—
र्विश्वासयंति च नरं न च विश्वसंति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलपराक्रमेण—
नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीया ॥

कर्ती । स्त्रियां सदा कुशीलसेवन करतीं हैं कुलमर्यादाका ध्यान नहिं रखतीं, गुरु पिता मित्र पति और पुत्रोंका भी लिहाज नहिं करतीं । इससंसारमें देव दैत्य सर्प हाथी ग्रह चन्द्र सूर्य आदिकी भी चेष्टाओंके जाननेवाले बडे २ विद्वान मौजूद हैं परन्तु स्त्रियोंका असली चरित्र वे भी नहिं जानते । जो चतुरपुरुष सुख दुःख जय पराजय जीवन मरण आदिके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जानते हैं खेद है स्त्रियोंके चरित्रके जाननेमें वे भी मूढ बने रहते हैं-स्त्रियोंके असली चरित्रका पता उन्हें भी नहिं मिलता । विशाल समुद्रको भी जहाज पार करजाते हैं, तारागण भी आकाशके कठिन मार्गको तयकर लेते हैं परन्तु स्त्रियोंके दुश्चरित्रका कोई पार नहिं पा सकता । यद्यपि क्रोधसे भरे हुये सिंह व्याघ्र दुष्ट सर्प हाथी और राजा भी मनुष्यका भयंकर अपकार कर सकते हैं परन्तु एक निरंकुश स्त्री जितना अपकार करसकती है उतना इनसे नहिं हो सकता । और भी कहा है-

ये स्त्रियां धनकेलिये हाल ही खिलखिला उठतीं हैं और हाल ही रोना चिल्लाना मचा देतीं हैं, दूसरेको अपना विश्वास तो करा देतीं हैं परन्तु स्वयं किसीका विश्वास नहिं करतीं इसलिये जो पुरुष कुलीन शीलवान और परोपकारी हैं उन्हें चाहिये कि इस भार भूमिमें रक्खीहुई हांडियोंके समान वे स्त्रियोंका सर्वथा त्याग करें।" इसप्रकार प्राणनाथ मकरध्वजके अत्यन्त कडे और रूखे वचन सुन महारानी रतिको बडा दुःख हुआ वह उत्तरमें इसप्रकार विनयभावसे बोली—

"प्राणनाथ! आपने कहा सो तो ठीक है परन्तु यह अवश्य

ध्यानमें रखिये कि–जन्मसे कोई उत्कृष्ट नहिं गिना जाता जो कुछ उत्कृष्टता होती है वह उत्तमोत्तम गुणोंके उदयसे होती है। देखिये जिसप्रकार रेशमकी उत्पत्ति निकृष्ट कीडासे होती है, सुवर्णकी पत्थरसे, दूवकी गोलोमसे, कमलकी कीचडसे, चन्द्रमाकी समुद्रसे, नीलकमलकी गोवरसे, अग्निकी काष्ठसे, मणिकी सापके फणसे और गोरचन आदिकी गौके मस्तक आदि निकृष्ट पदार्थोंसे उत्पत्ति होती है परंतु वे अपने चमक दमक और उज्ज्वलता आदि गुणोंसे उत्कृष्ट गिने जाते हैं उसीप्रकार यद्यपि समस्त स्त्रियां अच्छी नहीं परंतु अपने उत्तमोत्तम गुणोंसे उनमें भी कोई उत्तम गिनी जा सकती है। इसलिये जीवनाधार! आपको ठगकर हम कहां जासकती हैं? किसको अपना हृदयेश्वर बना सकती है? कृपाकर अब ऐसे दुःखदायी वचन न कहें।' मकरध्वज और रतिके परस्पर ऐसे वचन सुन प्रीतिको परम दुःख हुआ वह बोली–

"सखी! इस वाद विवादकी क्या आवश्यकता है? व्यर्थ तूने संदेह किया था इसलिये तुझे ऐसा सुनना पडा। आ चल, प्राणनाथकी आज्ञा अपन पालन करें। देख! खिन्न होनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि–

ईश्वर भी महादेव अभीतक कालकूटको नहिं छोडते अर्थात् वैष्णव धर्ममें यह कथा है कि जिससमय समुद्रका मथन किया गया था उससमय उससे अमृत लक्ष्मी विष आदि पदार्थ निकले थे उनमेंसे अमृतको तो देवताओंने और लक्ष्मी आदि उत्कृष्ट पदार्थोंको विष्णु आदिने ग्रहण किया था। अवशिष्ट कालकूट रहगया था जब उसको किसीने ग्रहण न किया तो उसे महादेवने अपने

कंठमें धारण करलिया और आजतक वे उसे धारण कर रहे हैं छोडते नहीं। कछुवेने अपने पृष्ठभागपर पृथ्वीका भार रखना स्वीकार किया था वह अभीतक धारण किये हें ओर समुद्रने वाडवानलको स्वीकार किया था वह अभीतक उसे अपने पेटमें रक्खे हे इसलिये यह स्पष्ट मालुम पडता है कि उत्तम पुरुष जिसबातको स्वीकार करलेते हैं उसका अवश्य पालन करते हैं-घबडाकर बीचमें ही नहिं छोड देते। इसलिये जो मुक्तिवनिताके समझानेका कार्य स्वीकार किया है वह अवश्य पालना चाहिये। और भी-

सूर्यवंशी राजा हरिश्चंद्रने चांडालकी सेवाकी थी अर्थात् वैष्णव धर्ममें यह प्रसिद्ध है कि हरिश्चंद्र वडा सद्दष्ट दानी था किसी याचक को वह किसी पदार्थकी मनाई नहीं करता था इसलिये एक दिन विश्वामित्रने आकर उससे समस्त राज्य माग लिया जिससे राजाको राज छोडकर काशी आना पडा और वहा चांडालकी सेवा करनी पडी। रामचंद्र सूर्यवंशके परम पराक्रमी नरेश थे परतु उन्हें भी वनमें आकर पर्वतकी महाभयंकर गुफाओंका आश्रय करना पडा। भीम अर्जुन आदि महापराक्रमी चद्रवशी राजाओंको भी कुरुवंशियोंके सामने दीनता धारण करनी पडी थी इसलिये जब यह बात प्रथमसे ही चली आई है कि अपनी २ प्रयोजनसिद्धिकेलिये मनुष्योंने नीचसे नीच और कठिनसे कठिन भी काम कर डाले हैं तब मैं परमरूपवती होकर सामान्य मुक्तिरूपी स्त्रीके सामने कैसे दीनता धारण करूगी, ऐसा तुझे भी अपने मनमें किसीप्रकारका अंदेशा न करना चाहिये" वस! इसप्रकार प्रीतिके स

मझानेसे महाराणी रतिने शीघ्र ही आर्यिकाका रूप धारण कर लिया और जिसप्रकार हस्तिनी क्रुद्ध हाथीके पाससे खसक देती है उसीप्रकार रति भी मकरध्वजके समीपसे चलदी।

चलते चलते रति थोड़ी ही दूर पहुच पायी थी कि उसकी मत्री मोहसे मार्गमें भेट होगई और उन दोनोंकी परस्पर यों बातचीत होने लगी–

मोह–स्वामिनी! यह क्या? यह विचित्ररूप धारणकर आपने इस विषम मार्गमें कैसे प्रवेश किया?

रति–(समस्त वृत्तात सुनाकर) महाराजकी आज्ञासे।

मोह–जिससमय दूत सज्वलनने विज्ञप्ति भेजी थी उससमय मुझे भी यह सब समाचार मालूम पड गया था और महाराजने मुझे सेना तयार कर लानेकेलिये भेजा था परतु यह उन्होंने बहुत ही अनुचित किया कि मै उनके पास भी न पहुच पाया कि उन्होंने अधीर हो बीचमें ही यह आपके साथ अनुचित वर्ताव करडाला।

रति–नहि मोह! इसमें महाराजका कुछ भी दोष नहीं तुम निश्चय समझो जो मनुष्य विषयी होते है उन्हे अच्छा बुरा कुछ भी नहिं सूझता-क्योंकि यह प्रसिद्ध बात है–

कमलके समान सुदरनेत्रोंको धारण करनेवाली देवागनाओंके होनेपर भी इद्र तापसी अहिल्यापर मुग्ध होगया था और उसके साथ विषय भोग किया था इसलिये यह बात स्पष्ट मालूम पडती है कि तृणोंके बने हुये घरमें अग्निके फुलिंगेके समान जिससमय हृदयमें कामाग्नि प्रज्वलित होजाती है उससमय विद्वानोंकी भी अच्छे बु

का विचार करनेवाली बुद्धि जलकर भस्म हो जाती है। महाराज मकरध्वज इससमय मुक्ति वनिताकेलिये लालायित है भला वे कैसे हित अहितका विचार कर सकते हैं ? उन्हें यह नहीं मालूम कि मुक्तिवनिता सिवाय भगवान जिनेंद्रके किसीकी ओर देखना तक भी नहिं चाहती फिर उनका उसकेलिये लालायित होना कहांतक युक्त है ? ठीक भी है जो पुरुष परस्त्रीको चाहते हैं वे अवश्य ही दुःख भोगते हैं क्योंकि—

स्त्रियां संसारकी कारण हैं नरकके द्वारको उद्घाटित करनेवाली हैं शोक और कलहकी मूल कारण हैं। जो पुरुष परस्त्रियोंके सेवन करनेवाले हैं इस लोकमें तो उनके सर्वस्वका हरण मारण ताडण और हाथ पैर आदि शरीरके अवयवोंका छेदन होना ही है परंतु परलोकमें भी मरकर या तो वे नरक जाते हैं या नपुंसक तिर्यंच आदिके दुःख भोगते हैं।" रतिके ऐसे वचन सुन मंत्री मोहने कहा—

स्वामिनी ! आपका कहना बिल्कुल यथार्थ है परंतु यह निश्चय समझो जैसा जिसका होना होता है उसका वैसा अवश्य होता है वह टल नहिं सकता। कहा भी है—

भवितव्यं यथा येन न तद्भवति चान्यथा।
नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति॥

अर्थात्—जो बात जैसी होनी होती है होकर मानती है अन्यथा नहीं होता, क्योंकि या तो उस होनेयोग्य बातके अनुकूल ही कारणकलाप मिल जाते हैं या स्वयं वैसे कारण कलापोंको मनुष्य एकत्र करलेता है। और भी कहा है—

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति न भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति।

अर्थात्–जो बात अनहोनी होती है वह हो नहिं सकती और जो होनेवाली है वह अनेक उपायोंके करनेपर भी रुक नहिं सकती। देखनेमें आता है कि जिसको जिस चीजकी प्राप्ति होनी नहीं नहिं होती उसके हाथपर रक्खी हुई भी वह चीज देखते २ नष्ट हो जाती है।

रति–मोह ! तो कहो अब क्या करना चाहिये ! यदि मैं पुन तुम्हारे साथ लौटकर महाराजके पास चलती हू तो वे कुपित होते हैं इसलिये यही अच्छा है कि तुम उनके पास जाओ और मैं तुम्हारे साथ न चलू।

मोह–नहीं स्वामिनी ! यह ठीक नहीं, तुम्हें अवश्य मेरे साथ चलना होगा।

रति-अच्छा ! चलना मुझे मजूर है पर यह तो बतलाओ जिससमय महाराज मुझे अपने पास देखेंगे उससमय उनके पृछनेपर क्या उत्तर दोगे ?

मोह–स्वामिनी ! इसबातकी चिंता करना व्यर्थ है क्योंकि यह सामान्य नियम है कि जिसप्रकार वर्षाके जलमे बीज फिर उससे बीज इसप्रकार बीजोंकी सतति उत्पन्न होती जाती है उसीप्रकार वचन बोलनेवालोंमें पहिले एक बोलता है पीछे उसका उत्तर फिर उसका उत्तर इसप्रकार उत्तर प्रत्युत्तरोंकी भी झडी लग जाती है ।" बस रानी रतिने मोहके वचन स्वीकार करलिये और दोनों महाराज मकरध्वजके पास जा पहुचे।

इसप्रकार माइदरके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित मकरध्वजपराजयकी भाषा वचनिकामें श्रुतावस्थाननामक प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय परिच्छेद ।

महाराज मकरध्वज अपने मनोहर शयनागारमें अतिशय कोमल सेजपर पडे थे और मुक्तिकामिनीकी गभीरचितासे कभी सुख तो कभी दु खके समुद्रमें गोता मारते हुये मत्री मोहकी राह देख रहे थे कि अचानक ही मोह उनके पास पहुचा और महाराणी रतिके साथ उसे आता देख वे एक दम अवाक् रहगये। कुछ समय तक शयनागारम सन्नाटा छा गया। महाराजने मोहसे कुछ भी न कहा इसलिये महाराजकी ऐसी विचित्र चेष्टा देखकर मोह ही अपने गभीर स्वरसे बोला–

"कृपानाथ! जबतक मे आ भी न पाया उसके पहिले ही आपने ऐसी बेसबरी की। इसकी क्या आवश्यकता थी आपको कुछ तो सतोष रखना चाहिये था। दूसरे क्या आज तक किसी विज्ञ पुरुषने अपनी स्त्रीको कभी दूतीका काम सौंपा है? जो आपने महाराणी रतिको दूती बना मुक्तिवनिताके पास भेजनेका साहस कर डाला! क्या आपको यह मालूम नहीं–वहापर मुक्तिकन्या रहती है उस स्थानका मार्ग महाविषम और कटकाकीर्ण है और वहापर उसके अत्यत बलवान सरक्षक रहते हैं कदाचित् वे महाराणी रतिको देखते और उसे मार डालते तो क्या आपको स्त्रीहत्याका दोष न लगता अथवा सर्वत्र आपकी हसी न होती? इसलिये मेरी विना सम्मतिलिये जो आपने विचार किया यह सर्वथा अनुचित किया क्योंकि कहा है–

हरिगीती २८ मात्रा।

दुरमत्रसे नृप नष्ट अरु यति सगसे, सुत लाड़से

द्विज ज्ञानके विन, कुल कुसुतसे, शील खलविश्वाससे ।
सखिता अरतिसे, कुनयसे वृद्धी, विदेश निवाससे-
रति, मद्यसे लज्जा, कृषी विन जाच, द्रव्य प्रमादसे ॥

अर्थात्--दुर्विचारसे राजा नष्ट हो जाता है, बहुत परिग्रहके
रण करनेमे यति, अधिक लाड प्यारसे पुत्र, विना विद्याभ्यासके
ाह्मण, कुपुत्रसे कुल, दुष्टोंके सहवाससे स्वभाव, स्नेहके न रखनेसे
ित्रता, अनीतिसे समृद्धि, परदेशमें रहनेसे स्नेह, मद्यपानसे लज्जा,
खरेख न करनेसे खेती ओर छोडदेने वा प्रमादसे धन नष्ट हो
ाता है । इसलिये राजाको चाहिये कि वह विना मन्त्रीकी
लाहके स्वय किसी कार्यको न करे । मन्त्रीके ऐसे वचन सुन महा-
ाज मकरध्वजने कहा—

मोह ! इन व्यर्थकी बातोंको रहने दो । अच्छा यह बतलाओ
ास कार्यकेलिये तुम्हें भेजा गया था वह तुमने कैसा और क्या किया ?
उत्तरमें मोहने कहा—

कृपानाथ ! जिस कार्यकेलिये आपने मुझे भेजा था वह
कार्य पूर्णरूपसे हो चुका । स्वामिन् ! मैंने इसरूपसे सेना सजाई
है कि मुक्ति, आपकी ही वनिता होजाय और राजा जिनराज भी
आपकी सेवा कर निकले । मोहकी इस खुशखबरीसे प्रसन्न हो
मकरध्वज बोले—

१ दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालना
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छील खलोपासनात् ।
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात् स्नेहः प्रवासाश्रयात्--
ह्री मद्यादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात्प्रमादाद्धनं ॥ १ ॥

ॐ

मोह—यदि ऐसा है-तो मेरी राय है कि सैन्य ले चलनेके पहिले ही शत्रु जिनराजके पास दूत भेजने चाहिये ? क्योंकि—

पुरा दूत प्रकर्तव्य पश्चाद् युद्ध. प्रवर्तते ।
तस्मात् दूत प्रशसति नीतिशास्त्रविचक्षणा. ॥

अर्थात् पहिले दूत और फिर युद्धका प्रबंध करना चाहिये ऐसा नीतिशास्त्रज्ञोंका मत य है ।

मकरध्वज—मोह ! तुम्हारा कहना यथार्थ है परतु योग्य दूतका प्रबंध करना आवश्यक होगा ।

मोह—स्वामिन् ! राग और द्वेष दूतकर्ममें अत्यत प्रवीण हैं इसलिये उन्हें ही दूत बनाकर भेजना चाहिये ।

मकरध्वज—क्या सत्य ही राग द्वेष दूतकर्ममें प्रवीण हैं ? ये इस कार्यका पूर्णरूपसे सपादन कर सकते हैं ?

मोह—हा महाराज ! राग और द्वेषकी बराबर चतुर कोई इस कार्यमें नहीं है क्योंकि उनके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि—

एतावनादिसम्भूतौ रागद्वेषा महाग्रहौ ।
अनतदु खसतानप्रसूते प्रथमाङ्कुरौ ॥
स्वतत्त्वानुगत चेत करोति यदि सयमी ।
रागादयस्तथाप्येते क्षिपति भवसागरे ॥
अयत्नेनापि जायेते चित्तभूमौ शरीरिणा ।
रागद्वेषाविमौ वीरौ ज्ञानराज्यागघातकौ ॥
क्वचिन्मूढ क्वचिद्भ्रात क्वचिद्भीतं क्वचिद्द्रुत ।
शकित च क्वचित्क्लिष्ट रागाद्यै क्रियते मन: ॥

अर्थात् महाभयकर पिशाचके समान राग द्वेष अनादिकालसे हैं और अगणित दु खोंकी सतानके उत्पन्न करनेमें नवीन

रंकके समान है। संयमी मनुष्य आत्मतत्त्वके विचारमें लीन भी रहे तथापि राग द्वेष उसके हृदयमें प्रविष्ट हो जाते हैं और उसे संसार समुद्रमें गोता खवाते हैं। विना प्रयत्नके ही शुद्ध भी की हुई चित्त-भूमिके अंदर राग द्वेष पैठ जाते हैं और सम्यग्ज्ञानरूपी राज्यको छिन्न भिन्न कर देते हैं। इन राग और द्वेषकी ही कृपासे कभी तो मन मूढ, कभी भ्रांत, कभी भयभीत, कभी शंकित और कभी नानाप्रकारके क्लेशोंसे परिपूर्ण हो जाता है।

इसप्रकार मंत्री मोहसे राग द्वेषकी पूर्ण प्रशंसा सुन महाराजने शीघ्र ही उन्हें अपने पास बुलाया और बडे सन्मानसे अपने शरीरके वस्त्र भूषण प्रदान कर कहा—

देखो भाई! जो कुछ भी दूतकर्म होगा वह तुम्हें इससमय करना होगा।

राग द्वेष—कृपानाथ! आप आज्ञा दीजिये। हम उसे सहर्ष करनेकेलिये तयार हैं।

मकरध्वज—अच्छा! तुम अभी चारित्रपुर जाओ और राजा निनेश्वरसे यह कहो राजन्! तुम जो मुक्तिकन्याके साथ विवाह कररहे हो सो क्या तुमने जगद्विजयी सम्राट् मकरध्वजकी आज्ञा लेली है? महाराज मकरध्वजकी आज्ञा है कि विवाह बंदकरो और तीनों-लोकमें सर्वथा उत्तम जिन तीनों रत्नोंको तुम उनके शास्त्र भंडारसे चुराकर ले आये हो जल्दी वापिस कर दो! अन्यथा अपनी विशाल सेनासे मंडित हो वे प्रातःकाल ही यहां आजायेंगे और तुम्हें अवश्य उनकी आज्ञा माननी पडेगी।

महाराज मकरध्वजकी आज्ञा पाकर दूत चलदिये और

विषम मार्गको तय करते हुये चारित्रपुरमें जा पहुचे। परतु ज्यों ही दोनों दूतोंने चारित्रपुरमें प्रवेश किया जिनराजके माहात्म्यसे उनकी सब सुधि बुधि विदा होगई। जिनराजके सामने जाना तक उन्हें असाध्य होगया इसलिये चारित्रपुरके निवासी राजा कामके गुप्तचर सज्वलनके पास वे पहुचे और इसप्रकार कहने लगे--

भाई सज्वलन! स्वामी मकरध्वजकी आज्ञानुसार हम यहा दूतकर्म करनेकेलिये आये हैं।

सज्वलन--यह तो ठीक है परतु यह तो बताओ तुम दोनोंने अपनी वीरवृत्तिको छोडकर यह दूतवृत्ति क्यों धारण की?

रागद्वेष--सज्वलन! क्या तुम नहिं जानते-जो पुरुष स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपालन करते है वे करने योग्य वा न करने योग्य कार्यका विचार नहिं करते क्योंकि यदि वे स्वामीकी आज्ञामें दखल दे निकलें तो स्वामी उन्हें प्रेमकी दृष्टिसे नहिं देखता। देखो--

जो पुरुष भयसे रहित होकर रणको शरण और विदेशको देश, समझता है, शीत वात वर्षा और गर्मीसे दु खित नहिं होता, न अभिमान करता है, न सन्मान होनेपर फूलता और अपमान होनेपर कृश होता है, सदा अपने अधिकारकी रक्षा करता है स्वामीके ताडन मारण, गाली गलौज और दडको पाप नहिं समझता बिना बुलाये ही स्वामीके समीप रह कर सदा उसकी सेवामें लगा रहता और पूछनेपर सत्य बोलता है, काम पडनेपर अग्रणी और सदा स्वामीके पीछे २ चलता है एव प्रसन्नतापूर्वक स्वामीसे पाये हुये धनको सुपात्रमें अर्पण करता है, वस्त्र आदिको अपने अंगमें

धारण करता है वही राजा वा स्वामीका प्रेमभाजन होता है इसलिये महाराजकी आज्ञानुसार चलना हमारा परमधर्म है। तथा भाई सज्वलन! सेवाधर्म बडा गहन है। देखो! जो पुरुष सेवामें धन उपार्जन करना चाहते हैं उनका शरीर भी स्वतत्र नहिं रहता। वे सदा स्वामीकी आज्ञामें दत्तचित्त रहते हैं। विद्वान पुरुषोंकी दृष्टिमें दरिद्री रोगी मूर्ख परदेशी और सेवक ये पाच प्रकारके मनुष्य जीते हुये भी मरे हुये हैं। जो पुरुष विद्वान है उनको हिंसक जीवोंसे व्याप्त वनमें रहना, भिक्षावृत्तिसे वा कडवी तूमीके भोजनसे निर्वाह करना और अधिक भार लादकर भी जीवन व्यतीत करना अच्छा, परतु सेवाकर उदरका निर्वाह करना वा उससे राजाकी विभूतिका भी मिलना अच्छा नहीं। सेवक मनुष्यसे बढकर ससारमें कोई भी अधिक मूर्ख नहीं। जो अपनी पूछनेलिये राजाको प्रणाम करता है, आजीविकाकेलिये प्राणोंका त्याग और सुखनेलिये स्वामीकी आज्ञानुसार घोर दु ख सहता है। सेवक जब भाति २ के स्वामीके वचनोंका मर्म नहिं समझता उससमय स्नेहपूर्वक उत्तम कार्यके करनेपर भी कभी तो स्वामी उससे रुष्ट हो जाता है और कभी विना मनके हीन काम करने पर भी वह सतुष्ट हो जाता है। यदि सेवक अधिक बोलना नहिं जानता तो स्वामी उसे गूगा कहता है, यदि लच्छेदार बात करता है तो स्वामी उसे वातूल और असबद्ध प्रलाप करनेवाला मानता है। एव सदा पासमें रहनेपर बेवकूफ, शातिपूर्वक गाली गलोज सुननेपर डरपोक और कुछ कहनेपर यदि उत्तर देता है तो अकुलीन कहाजाता है इसलिये सेवा धर्मका विद्वान यति भी पता नहिं लगा सकते॥" राग द्वेषके ऐसे विद्वत्तापरिपूर्ण वचन सुनकर सज्वलनने कहा--

भाई राग और द्वेष ! तुमने विलकुल ठीक कहा है। वास्तवमें स्वामीकी आज्ञा और सेवाधर्म ऐसे ही हैं। अच्छा अब बतलाओ मुझसे तुम क्या कार्य कराना चाहते हो ?

राग और द्वेष–भाई सज्वलन ! जिसरूपसे हो सके उसरूपसे हमें जिनेंद्रका साक्षात्कार करादो।

सज्वलन–(मनमें कुछ अधिक चिंतित होकर) भाई ! जिनेंद्रका साक्षात्कार होना तो अत्यत दुस्साध्य है परतु खैर ! आप लोगोंका प्रबल आग्रह है तो तुम्हें उनसे मिलानेके लिये पूर्ण प्रयत्न करूगा। परतु आप लोग इसबातका अवश्य ध्यान रक्खें कि भगवान जिनेंद्रका दर्शन शायद ही आपकेलिये कल्याणकारी होगा क्योंकि वे आपके स्वामी राजा मकरध्वजका नाम तक भी सुनना पसद नहिं करते। कदाचित् तुम्हें देखकर उनके मनमें तुम्हारे स्वामीके अहित करनेकी ठन गई तो घोर अनर्थका सामना करना पटेगा-लेनेके देने पड जायगे।

राग द्वेष प्रिय सज्वलन ! यह सब ठीक है परतु तुम हमारे मित्र हो। यदि तुम्हींसे हम विनती न करें तो बताओ किसके पास जाय ? इससमय हम आपके अभ्यागत हैं इसलिये आपको अवश्य हमारा निवेदन स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि कहा है–

आओ आओ लो यह आसन मित्र ! मिले क्यों बहुदिनसे। क्या वृत्तात ? क्षीण अति क्यों हो ? मैं प्रसन्न तुमदर्शनसे ॥

ऐह्यागच्छ समाश्रयासनमिद कस्माच्चिराद् दृश्यसे
का वार्ता अतिदुर्बलोऽसि च भवान् प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एव नीचजनोऽपि कर्तुमुचित प्राप्ते गृहे सर्वदा
धर्मोय गृहमेधिना निगदित प्राज्ञैलघु शर्मद ॥

नीच मनुजका भी यह घतन घर आये अतिथीके सग ।
होता, कहा इसीसे लघु भी यह गृहस्थ नृप सुखका अग ॥

अर्थात्-आओ यहा आओ, इस आसनपर बैठो ! बहुतकालके बाद आज क्यों दीखे हो ? क्या नवीन बात है ? इतने क्षीण कैसे होगये हो ? आज आपके देखनेसे मुझे नितात आनद हुआ है ऐसा नीच मनुष्य भी अपने घरपर आये हुये अभ्यागतसे कहता है इसलिये विद्वानोंने ऐसे वर्तावको गृहस्थियोंका कल्याणकारी धर्म बतलाया है । और भी कहा है--

ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते प्रशस्याश्च भूतले ।
आगच्छति गृहे येषा कार्यार्थं सुहृदो जनाः ॥

अर्थात्-जिनके घरपर किसी प्रयोजनकी सिद्धिकेलिये मित्र जन आवें वे ससारमें धन्य विवेकी और प्रशसनीय गिने जाते हैं । इसलिये मित्र ! हमारे आनेसे आपको बुरा न मानना चाहिये।

सज्वलन--भाई राग द्वेष ? इसमें बुरे माननेकी क्या बात है ? मैंने तो आपलोगोंके हितसे वैसा कहा था परतु आपको वह बुरा लग गया। अच्छा आप लोग यहा आनदसे रहै। मै महाराज जिनराजके समीप जाता हू और उनसे पूछकर अभी आता हू क्योंकि--

लभ्यते भूमिपर्यंत समुद्रस्य गिरेरपि ।
न कथचिं महीपस्य चित्तात केनचित्क्वचित् ॥

अर्थात्--समुद्र और पर्वतकी तो थाह मिल जाती है परतु राजाके चित्तकी थाह नहि मिलती ।

राग द्वेष--अच्छा आप जैसा उचित समझै वैसा करै और हमारा अपराध क्षमा करैं क्योंकि विना विचारे हमारे मुखसे वैसे वचन निकलगये हैं ।

संज्वलन--नहि भाई! इसमें अपराध क्षमा करानेकी क्या बात है ? आपने तो गृहस्थ धर्मका स्वरूप बतलाया है भला आपके वचनोंसे मै क्यों बुराई ग्रहण करूगा ?

इसप्रकार राग और द्वेषको समझाकर गुप्तचर सज्वलन भगवान जिनेंद्रके पास चलदिया और वहा जाकर उनसे बोला--

भगवन्! महाराज मकरध्वजके दो दूत आये हैं यदि श्रीमानकी आज्ञा हो तो वे सभामें लाये जाय ?

जिनेंद्र--(हाथ उठाकर) अच्छा आज्ञा है उन्हे भीतर आने दो।

भगवान जिनेंद्रकी आज्ञा पाकर सज्वलन उन्हें लिवानेकेलिये जाता ही था कि बीचमें ही सम्यक्त्वने रोककर कहा--

सज्वलन! यह क्या करता है ? अरे जहापर निर्वेद उपशम मार्दव आदि वीर मोजूद हैं वहापर क्या राग द्वेष आदिका आनेसे कल्याण हो सकता है ?

संज्वलन--यह बात बिलकुल ठीक ह अवश्य निर्वेद आदि प्रबल योधाओंकी मोजूदगीमें राग द्वेष आदिकी दाल नहिं गल सकती परतु राग द्वेष भी तो जगत्प्रसिद्ध प्रबल सुभट हैं। और वे प्रबल सुभट न भी हों तथापि इससमय तो वे यहा दूतका काम करने आये हैं इसलिये (ऐसी दशामें) कुछ हानि नहि हो सकती और अच्छा बुरा विचारना भी इससमय अयुक्त जान पडता है।" सज्वलन और सम्यक्त्वका विवाद सुनकर महाराज जिनेंद्रने कहा--

"आप लोगोंका विवाद करना व्यर्थ है प्रात काल होते ही मैं राजा मकरध्वजको मय उसकी सेनाके यमलोकका मार्ग दिखला-

ऊगा इसलिये राग और द्वेषके यहा आनेपर कोई हानि नहिं हो सक्ती-वेरोक टोक उन्हें सभामें आने दो।" भगवान जिनेंद्रकी आज्ञासे सज्वलन चल दिया और उसने दोनों दूत सभामें लाकर उपस्थित करदिये।

महाराज जिनेंद्र उससमय उत्तम सिंहासनपर विराजमान थे, उनके शिरपर तीन लोककी प्रभुताको प्रकट करनेवाले तीन छत्र लटक रहे थे, चौसठ चमर ढुल रहे थे, और वे स्वामाविक तेजसे अतिशय प्रतापी जान पडते थे इसलिये ज्योंही राग और द्वेषने उनकी ओर देखा वे थोडी देरकेलिये स्तब्ध रहगये। कुछ देर बाद वडे साहससे उनमेंसे एक महाराज जिनेंद्रके पास गया और प्रणाम कर वाला-

भगवन् त्रिलोकविजयी महाराज मकरध्वजने यह आज्ञा दी है कि-तीन भुवनमें सार जो तीन रत्न आप हमारे भडारसे ले आये हैं उन्हे वापिस भेजदें ? मुक्तिकन्याके साथ जो आपके विवाहका निश्चय होगया है सो उसमें आपने मेरी आज्ञा क्यों नहिं ली ? क्या त्रिभुवनविजयी चक्रवर्ती मुझ मकरध्वजकी आज्ञा विना मुक्तिकन्याके साथ कभी आपका विवाह हो सकता है ? इसलिये यदि आप सुखसे रहना चाहते हैं तो मेरी आज्ञाका प्रतिपालन करें। आप याद रखिये महाराज मकरध्वजकी सेवासे कोई पदार्थ अलभ्य नहिं हो सक्ता। क्योंकि-

कर्पूरकुंकुमागुरुमृगमदहरिचंदनादिवस्तूनि।
मदने सति प्रसन्ने भवति सौख्यान्यनेकानि॥
धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः।
सदा मत्ताश्च मातंगा प्रसन्ने मदने सति॥

अर्थात महाराज मकरध्वजके प्रसन्न होनेपर कपूर केसर अगर कस्तूरी मलय चंदन आदि अनेक पदार्थ सुखदेने लगते हैं किंतु विना उनकी प्रसन्नताके ये सब भयंकर संताप प्रदान करते हैं तथा श्वेत छत्र मनोहर घोडे और मत्तगज भी उन्हीं महाराजकी कृपासे प्राप्त होते हैं इसलिये राजन्! आपको हमारे स्वामी मकरध्वजकी अवश्य सेवा करनी चाहिये। आप राजा मकरध्वजको मामूली राजा न समझें क्योंकि उनकी प्रसिद्धि है कि—

जिसके सेवक देव असुरगण चन्द्र सूर्य यक्षादिक हैं
गंधर्वादि पिशाच राक्षगण विद्याधर अरु किन्नर हैं।
नागलोकमें नागपती अरु स्वर्गमध्य सुरगणस्वामी
ब्रह्मा हरिहर अरु नृपती भी, धन्य वह मन्मथ नामी॥

अर्थात्—सुर असुर चंद्रमा सूर्य यक्ष गंधर्व पिशाच राक्षस विद्याधर किन्नर धरणेंद्र सुरेंद्र ब्रह्मा विष्णु महादेव और भी इनसे भिन्न नरेंद्र आदि राजा मकरध्वजकी सेवा करते हैं। इसलिये हमारी सम्मति है कि आप राजा मकरध्वजके साथ अवश्य मित्रता करलें क्योंकि वे महाबलवान हैं यदि उन्हें क्रोध आगया तो वे आपको कुछ भी न गिनेंगे। और भी—

राजन्! चाहें आप पाताल स्वर्ग और मेरुपर चले जाय, मंत्र औषध और शस्त्रोंसे भी रक्षा कर लें तथापि महाराज मकरध्वजके कुपित होनेपर आपकी रक्षा नहीं हो सक्ती क्योंकि उन्हों-

---

१ सेवा यस्य कृता सुरासुरगणैश्चंद्रार्कयक्षादिकै
गंधर्वादिपिशाचराक्षसगणैर्विद्याधरैः किन्नरैः।
पाताले धरणीधरप्रभृतिभिः स्वर्गे सुरेंद्रादिकैः
ब्रह्माविष्णुमहेश्वरैरपि तथा चान्यैर्नरेंद्रैरपि॥

ने विना किसीकी सहायताके चर अचर समस्त लोकको छिन भिन्नकर वश कर लिया है । हजार उपाय करनेपर भी उनका कोई बाल भी बाका नहीं कर सक्ता और उनके भयसे समस्त लोक थर २ कापता है । वे महाराज कालकूट विषसे भी भयकर विष हैं क्योंकि कालकूट उपायमे नष्ट भी किया जा सकता है परतु उनका नाश होना दुस्साध्य है । पिशाच सर्प दैत्य ग्रह राक्षस भी उतना सताप नहिं दे सकते जितना वे सताप दे सक्ते है। जिससमय महाराज मकरध्वज अपने पैने तीरोंसे जीवोंके हृद योंको भेदते हैं उससमय क्षणभर भी वे स्वस्थ नहिं रह सक्ते। जो मनुष्य उन (काम) की क्रोधाग्निसे जाज्वल्यमान रहते हैं वे जानकर भी कुछ जान नहिं सकते और देखकर भी देख नहिं सकते। चाहैं उन्हें अगणित मेघमडलसे सिंचित किया जाय, बहुतसे समुद्रोंसे न्हराया जाय तथापि वे शात नहिं हो सक्ते। तभीतक मनुष्यकी प्रतिष्ठा रह सकती है तभीतक मन चचलता छोड निश्चलता धारण करसकता है और समस्त तत्त्वोंके प्रकाश करनेमें अद्वितीय दीपक सिद्धातसूत्र भी तभीतक हृदयमें स्फुरायमान रह सकता है जबतक समुद्रकी चचल तरगोंके समान चचल युवतियों-के कटाक्षोंसे हृदय विद्ध नहिं होता-कामकी तीव्र वेदनाका सामना नहिं करना पडता। राजन्! रमणिया उन महाराज (काम) की अनुपम शक्तिया हैं । विचार तो करो जिन युवतियोंकी पाद ताडन आदि चेष्टासे नासमझ कुरवक तिलक अशोक और माकद तक विकृत हो जाते है उन स्त्रियोंके कोमल भुजलताओंके आलि गन आदि विलाससे, पूर्ण चद्रमाके समान शुभ रससे आढ्य

मुख कमलके देखनेसे किस योगीको कामके आधीन नहिं होना पडता। हाव भावोंसे युक्त, कस्तूरीकी रचनासे भूषित और भ्रूविभ्रमसे मंडित कामिनियोंके मुखका दर्शन भी मनुष्योंके हृदयको कंपित कर देता है और धैर्यसे च्युत करदेता है। इसलिये अत्र विशेष कहना व्यर्थ है बस हमारा आग्रह है कि-यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो महाराज मकरध्वजकी सेवा करें क्यों व्यर्थ यहा मुक्तिकन्याके विवाहकेलिये लालायित हो रहे है।"

रागद्वेषकी उद्धता भरी इस वक्तृताको सुनकर भी जिनराजने शात हो उत्तरमें कहा -

भाई! यह बात ठीक है परंतु तुम्हारा स्वामी मकरध्वज उच्च नहीं है हम कभी उसकी सेवा नहीं कर सकते क्योंकि-

वनेऽपि सिंहा मृगमांसभोजिनो बुभुक्षिता नैव तृणं चरंति।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समाचरंति॥

अर्थात् जिसप्रकार अन्य पशुओंको मारकर मासका भोजन करनेवाले सिंह वनमें रहकर भूख लगनेपर भी तृणभक्षण नहीं करते उसीप्रकार जो पुरुष कुलीन हैं वे आपत्तियोंके आनेपर भी नीच कर्मोंका आचरण नहिं कर सकते। और भी कहा है-

ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलं।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयो॥
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतं।
ययोरेव गुणं साम्यं तयोर्मैत्री भवेद् ध्रुवं॥

अर्थात्-जो समान शीलवान समान कुलवान समान धनवान समान विद्वान और समान गुणवान होते हैं उन्हींकी आपसमें मित्रता होसकती है किंतु पुष्ट विपुष्ट-घडा और वटवृक्षके समान

छोटे बड़ोंमें मित्रता नहिं हो सकती। तुम्हारे स्वामी मकरध्वजमें और मुझमें किसी तरह भी साम्य नहिं है। एव जो तुमने हरि हरब्रह्मा आदिके विजयसे अपने स्वामीकी वीरता का गुण गान किया सो वे लोग विषयोंमें आसक्त हैं इसलिये उनका जीतना कठिन नहीं। मैंने विषयोंकी ओरसे सर्वथा अपनी दृष्टिको सकुचित करलिया है इसलिये तुम्हारा स्वामी मुझे जीत सके यह बात तो दूर रहो मेरे पास तक भी नहिं फटक सकता। भाई! जिन जिन बातोंमें तुमने अपने राजाकी प्रशसा की है उन बातोंसे उसकी शूर वीरता नहिं जानी जासक्ती क्योंकि जो मनुष्य अत्यत शूरवीर होते हैं वे नट भाड और वैतालिकोंके समान किसीसे याचना नहिं करते परतु तुम्हारा राजा मकरध्वज तो हमसे रत्नोंकी याचना करता है इसलिये तुम जाओ और उससे कह दो कि मैं इसरीतिसे उसे रत्न कभी वापिस नहिं करसकता किंतु–

रणमें मेरा कर विजय हरदेगा अभिमान।
रत्नाधिप होगा वही मम वैरी बलवान॥

अर्थात् युद्धकर सग्राममें जब मेरे घमडको चकना चूर कर देगा तब ही वह मेरा शत्रु रत्नोंका स्वामी होगा अन्यथा नहीं। इसके सिवा जो तुमने भोगोंकी प्राप्तिका उल्लेख कर मुझे उनकी तरफ लोलुपी करनेका प्रयत्न किया है सो उनकी मैंने पहिलेसे ही जाच करली है वे परिपाकमें विरस और विनाशीक ठहर गये हैं देखो—

१ यो मा जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स रत्नाधिपतिर्भवेत्॥

धन पैरकी धूलिके समान, यौवन-पर्वतकी नदीके वेगके समान, मानुष्य-जलकी बूंदके तुल्य, जीवन-फेनके समान, भोग स्वप्नमें देखेहुये पदार्थोंके समान और पुत्र स्त्री आदि तृणकी अग्निके समान चचल और क्षणभरमें विनाशीक हैं, शरीर, रोगोंका घर है ऐश्वर्य-नाशशील, और जीवन मरणसे युक्त है। स्त्रियोंकी आशा नरकका द्वार दु खोंकी खानि पापका कारण और कलहका मूल कारण है इसलिये उनके आलिंगन आदिसे कैसे सुख मिल सकता है? अत्यत क्रुद्ध और चचल सर्पिणीका आलिंगन करना तो अच्छा परतु नरकके साक्षात् द्वारभूत स्त्रियोंका आलिंगन हसीमें भी करना अच्छा नहीं। मैथुन इद्रायणके फलके समान पहिले पहिल अच्छा लगनेवाला परिपाकमें महाविरस और अत्यत भय प्रदान करनेवाला है एव अनंत दु खोंका कारण है नरकका लेजानेवाला है। इसलिये दूतो! अधिक कहनेसे क्या? तुम अपने स्वामीसे कहदैना कि अव्याबाधमय सुखकी प्राप्तिकेलिये मैं अवश्य मुक्तिकन्याके साथ विवाह करूगा और—

यदि आवेगा नाथ तुम सहित मोह बल बाण।
तो यह निश्चित समझलो होगा वह गतप्राण॥

अर्थात् यदि तुम्हारा स्वामी मत्री मोह बाण और सेनाको लेकर समाममें मुझसे लड़ने आवेगा तो तुम निश्चय समझलो वह अवश्य मारा जायगा।"

जिनराजके ऐसे वचन सुन राग द्वेष जलकर खाक होगये वे क्रोधाध हो बोले—

---

[1] समोह सशरं कामं ससैन्य क्यमप्यह।
प्राप्नोमि यदि संग्रामे वधिष्यामि न सशय॥

राजन्! क्यों इन दुर्वचनोंका प्रयोग करते हो? याद रक्खो तभीतक तुम्हारा मन अव्याबाधमय सुख पानेकेलिये उथल पुथल कर रहा है जबतक उसपर महाराज मकरध्वजके तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा नहिं होती। क्योंकि–

प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसंपदस्तावत्।
न पतति बाणचया यावत् श्रीकामभूपस्य॥

अर्थात् विद्वानोंके मनमें विवेक–हित अहितका ज्ञान और शास्त्रोंकी संपत्ति तभीतक स्थिर रह सकती है जबतक उनके मनपर महाराज मकरध्वजके तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार नहिं होता।"

रागद्वेषको इसप्रकार मीमांसे अधिक बोलता देख संयमको बडा बुरा लगा इसलिये उसने शीघ्रही राजा मकरध्वजकेलिये लिखकर एक पत्र दिया और उन्हें राजसभासे बाहिर कर दिया।

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें दूतविधिसंवाद नामक द्वितीयपरिच्छेद समाप्त हुआ॥ २॥

तृतीय परिच्छेद।

संयमद्वारा अपनेको अपमानित देख राग द्वेषको बडा कष्ट हुआ वे वहांसे चलकर शीघ्र ही महाराज मकरध्वजकी सभामें आये और स्वामीको प्रणामकर यथास्थान बैठगये। महाराज मकरध्वजको जिनराजके असली हाल जाननेकी भारी उत्कंठा लग रही थी इसलिये ज्योंही उन्होंने सभामें राग और द्वेषको देखा वे पूछने लगे–

"दूतो! तुम लोगोंने राजा जिनेंद्रके दरबारमें जाकर क्या कहा? राजा जिनेंद्रने क्या उत्तर दिया? और कैसी उनकी सैन्य सामग्री है?" उत्तरमें राग द्वेष बोले—

महाराज! राजा जिनेंद्रके विषयमें क्या पूछना है? वह शत्रुओंके सर्वथा अगम्य और प्रचड शक्तिका धारक है इसलिये किसीको कुछ नहिं समझता। कृपानाथ! हमने राजा जिनेंद्रको शांतिका लोभ और दाम दड और भेदका भी भय दिखलाया परतु अपने ज्वलत बल्के घमडसे उसने कुछ भी न गिना उल्टा यह और कहा-अरे! तुम्हारा स्वामी मकरध्वज महानीच है। हम कभी उसकी सेवा नहिं कर सकते देखते २ उसे मय सेनाके यमलोकका पथिक बनाया जायगा।"

मकरध्वज-अरे! यह क्या मिथ्या बोल रहे हो, क्या तुमलोग सेनाके बाहिर हो जो राजा जिनेंद्रके वैसे अहकार परिपूर्ण वचन सुन तुमने जरा भी अपना पराभव न माना। तुम्हें उचित था कि वहीं अपने बलका कौशल दिखलाते।

राग द्वेष-कृपानाथ! जो पुरुष उन्नत होते है वे हीन पुरुषोंके सामने बलका कौशल नहिं दिखाते किंतु समान शक्तिवालेके ही सामने वे अपना पौरुष दिखाना अच्छा समझते हैं। इसलिये राजा जिनेंद्रके वैसे वचन सुनकर भी हमें कुछ अपना पराभव न जान पडा क्योंकि कहा भी है—

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून्प्रबाधते महान्महद्भिश्च करोति विग्रहं॥

अर्थात्-ऊंचे उठे हुये और कठोर ही वृक्षोंको आंधी उखा-

डकर फेंक देती है। कोमल ओर नीचे झुकेहुये तृणोंको नहीं इसलिये यह बात सिद्ध है कि बडोंका बडोंके साथ ही विरोध होता है। छोटोंके साथ नहीं, ओर भी कहा है—

गडस्थलेषु मदवारिषु लौल्यलुब्ध-
मत्तभ्रमद्भ्रमरपादतलाहतोपि।
कोपं न गच्छति नितांतबलोऽपि नाग
स्त्वल्पे बले न बलवान्परिकोपमेति॥

अर्थात् मदके जलसे तलवतल गडस्थलपर सुगंधिसे आये हुये उन्मत्तभ्रमरोंसे पीडित भी प्रचंड शक्तिका धारक हाथी जरा भी कोप नहिं करता इसलिये स्पष्ट माल्म पडता है कि बलवान मनुष्य अल्प शक्तिके धारकपर क्रोध नहिं करते। कृपानाथ! राजा जिनराज घमंडका तो पुंज है परंतु तुच्छ और थोडी शक्तिका धारक है इसलिये यदि उसकी सभामें हम अपने बलका परिचय देते तो अयुक्त होता।" इसप्रकार राग और द्वेषसे जिनराज का वृत्तांत सुनकर मकरध्वज जलकर खाक होगये। घृतकी आहुतिसे जिसप्रकार अग्निकी लौ और भी भयंकररूप धारण करलेती है उसीप्रकार दूतोंकी बातसे उनके हृदयमें क्रोधाग्नि अधिक भयकने लगी। उन्होंने शीघ्रही भेरीको बजानेवाले सेवक अन्याय को बुलाया और क्रोधसे लडखडाती हुई आवाजमें कहा "अन्याय! शीघ्रही अनीतिरूपी भेरीको बजाओ जिससे मेरी सेना सजधजकर तयार हो जाय। देखो अभी जाकर राजा जिनेंद्रका घमंड चकना चूर करना है।" अपने स्वामी राजा मकरध्वजकी आज्ञा पाते ही अन्यायने बडे जोरसे अनीतिरूपी भेरी बजाई और उसका उग्र शब्द सुनकर राजा जिनेंद्रके पराजयार्थ

सैन्यमडल सन्नद्ध होने लगा। अठारह दोष, तीन अज्ञान, सात व्यसन, पाच इद्रिया, तीन दड, तीन शल्य, दो आस्रव, चार आयु, दो गोत्र, दो वेदनीय, पाच अतराय, पाच ज्ञानावरण, निन्यानवे नामकर्म, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, नो नोकषाय, राग, द्वेष, असयम, आशा निराशा, मिथ्यात्व, सम्यङ्‌मिथ्यात्व ओर सम्यक्त्वप्रकृतिमिथ्यात्व आदि समस्त राजा ओर सुभट जो महा शूर वीर, शत्रुकुलके दर्पसहारक थे देखते देखते सज धजकर तयार हो गये। समस्त देवोंके साथ इद्रको और महादेव सूर्य चद्रमा कृष्ण एव ब्रह्मा आदिको भी अपने वश करनेवाला मोह वीर भी यमराजके समान शीघ्र ही तयार होगया और सबके सब अपने २ मुखोंसे घमडके पुजोंको उगलते हुये शीघ्र ही महाराज मकरध्वजके सामने जाकर उपस्थित हो गये। सेनाको इस प्रकार सजधजकर अपने सामने आते देख महाराज मकरध्वज बडे प्रसन्न हुये। उन्होंने आनदमे मत्री मोहका पट्टबधन और तिलकपूर्वक पारितोषिक स्वरूप अनेक आभरण प्रदान करते हुये कहा—

"प्रिय मोह! अब तुम्हें ही राज्यकी रक्षा करनी होगी। तुमही समस्त सेनाके अधिपति हो और तुम्हारे समान सग्राममें कोई प्रचड शूरवीर नहि दीख पडता। क्योंकि देखो—

चद्रके विन यथा रजनी सर सरोजोंके विना
गधके विन पुष्प अरु गजराज दातोंके विना।

१ यद्वच्चद्रमसा विनापि रजनी यद्वत्सरोजैः सर
गधेनैव विना न भाति कुसुम दतीव दतैर्विना।
यद्वद्भाति सभा न पडितजनैर्यद्वन्मयूखैरवि-
स्तद्वन्मोह! विना त्वया मम दल नो भाति वीरश्रिया॥

पडित जनोंके बिन सभा बिन किरणके सूरज यथा
शोभित न होता मोह ! मम दल तुम बिना कुछ भी तथा ॥

अर्थात् जिसप्रकार विना चद्रमाके रात्रि, विना कमलोंके सरोवर, विना गधके पुष्प, विना दातोंके हाथी, विना पडितोंके सभा और विना किरणोंके सूर्य शोभित नहिं होता उसीप्रकार हे मोह ! विना तुम्हारे मेरा सैन्यमडल भी शोभित नहिं होता । इसलिये मुझे अब पूर्ण विश्वास होता है कि मैं राजा जिनेंद्र का अवश्य पराजय करूगा ।" इसप्रकार राजा मकरध्वज और मोहकी ये वातें चलही रही थी कि इतनेमें ही अपने प्रखर मद जलकी धारासे पृथ्वीको तलवतल करते हुए गडस्थलोंसे शोभित आठ मदरूपी आठ महागज और अनत वेगका धारक, उन्नत, दुर्धर, चपल मनरूप अश्वोंका समूहभी सामने आकर उपस्थित होगया । एव अनेक शूरवीर क्षत्रिय योधाओंसे भूषित, कुकथारूपी विशाल दडोंसे युक्त, दुष्ट लेश्यारूपी ध्वजाओंसे मडित, जन्म जरा मरण रूप विशाल स्तभोंसे शोभित, मिथ्यादर्शन रूपी अवारीसे युक्त और पुद्गल आदि पाच द्रव्यरूपी शब्दोंसे मनुष्योंके कानोंको वधिर करनेवाले चतुरग सैन्यसे परिवृत मनरूपी विशाल हस्तीपर सवार होकर राजा मकरध्वज जिनराजसे युद्ध करनेकेलिये चल दिये । इसीसमय महाराज मकरध्वजकी पक्ष का एक, तीन मूढतारूपी राजाओं और शका आदि आठ वीरोंसे मडित ससार दडको हाथमें लिये अपनी प्रचड गर्जनासे दिशाओंको कपायमान करनेवाला महाबलवान मिथ्यात्व नामक मडलेश्वर राजा भी आ पहुचा और ज्योंही उसने महाराज मकर

मन्त्री मोहकी इस गर्हापूर्ण उक्तिको सुनकर मिथ्यात्वने कहा ''अच्छा महाराज ! आपसमें विशेष वादविवादकी आवश्यकता नहीं है। आप निश्चय समझिये जैसा मैंने हरिहर ब्रह्मा आदिका हाल किया है वैसा ही प्रभात होते ही यदि जिनेंद्रका न कर डालू तो अग्निमें जलकर भस्म हो जाऊगा।''

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें मकरध्वजकी सेनाका वर्णन करने वाला तृतीयपरिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थ परिच्छेद ।

राजसभासे दूतोंके चले जानेपर ही राजा जिनेंद्रने संवेगको अपने पास बुलाया और यह कहा—

''संवेग ! शीघ्रही सेनाको युद्ध करनेकेलिये तैयार होनेकी सूचना दो। देखो ! इसमें किसी तरहकी ढील न हो। अभी राजा मकरध्वजके साथ युद्ध करना होगा।'' अपने महाराज जिनेंद्रकी आज्ञा सुनते ही संवेगने वैराग्यको जोकि भेरी बजानेवाला था अपने पास बुलाया और शीघ्रही भेरी बजानेकी आज्ञा दी।

सेनापति संवेगकी आज्ञासे वैराग्य आयुधशालमें पहुंचा और उत्साहके साथ जोरसे विरति नामकी भेरी बजाने लगा। उसका प्रचंड शब्द सुनते ही महाराज जिनेंद्रके समस्त सामंतगण बडे आनंदसे राजा मकरध्वजसे लडनेकेलिये शीघ्र तयार होने लगे। उनमें दश धर्म, दश संयम, दश प्रायश्चित, आठ महागुण, बारह तप, पाच आचार, अठ्ठाईस मूलगुण, बारह अंग, तेरह

चारित्र, चौदहपूर्व, नौ ब्रह्मचर्य, नौ नय, तीन गुप्तिया, पाच स्वाध्याय, चार दर्शन, तीन सौ छत्तीस मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, दो मन पर्यय, छै अवधिज्ञान और केवलज्ञान आदि बडे बडे राजा थे जो कामदेवरूपी हस्तीकेलिये सिंहके समान, पूर्ण बलवान, शत्रुका मानमर्दन करनेवाले थे। इसके सिवा धर्मध्यानके साथ निर्वेग, शुक्लध्यानके साथ उपशम, अठारह हजार भेदरूप राजाओंसे मंडित राजा शील और पाच राजाओंसे युक्त राजा निर्ग्रंथ आकर सेनामें मिलगये एव सबसे पीछे प्रचड पराक्रमका धारक राजा सम्यक्त्व जो समस्त शत्रुरूपी हस्तियोंकेलिये सिंह था बडे २ इद्र विद्याधर ब्रह्मा और चद्रमा आदि भी जिसके चरणोंको नमस्कार करते थे और जो सदा कामका मददलन करनेवाला था सेनामें आकर मिल गया जिससे अतुल पराक्रमी समस्त सुभटोंके एक स्थानपर मिलजानेसे राजा जिनेंद्रका कटक अत्यत शोभित होने लगा। उससमय सैन्यमडलमें दुर्धर उन्नत दुर्जय और चपल मनको वश करनेवाले जीवके स्वाभाविक गुणरूपी तुरगोंके खुरोंसे उठी हुई धूलिसे समस्त आकाशमडल ढक गया था। प्रमाण और ससमगरूप मत्तगजोंके चीत्कारसे दिग्गजोंको भय होरहा था। चौरासी लक्षणरूप विशाल रथोंका समुद्रकी गर्जनाके समान गभीर शब्द होता था। स्याद्वादरूप भेरीकी गर्जनासे, पाच समिति और पाच महाव्रतकेव्याख्यानके शब्दोंसे मनुष्योंके कान बधिर हो रहे थे एक दूसरेकी बात तक नहिं सुनता था। आकाशपर्यंत लहरायमान शुक्लेश्यारूपी दडोंसे पदपदपर राजा मकरध्वजको भय हुए

रुचिरूपी ध्वजाओंसे समस्त दिशायें आच्छन्न होगईं थीं और चारों ओर उग्र व्रतरूपी विशाल स्तंभ शोभा दे रहे थे। इस प्रकार चतुरंग सैन्यमंडलसे चौतर्फा मंडित, अनुप्रेक्षारूपी मज बूत कवचसे भूषित, शास्त्ररूपी निर्दोष मुकुटसे मंडित, सिद्धध्यान स्वरूप अमोघ तीक्ष्ण अस्त्रसे अलङ्कृत और समाधिरूप तलवार को हाथमें लिये हुये भगवान जिनेंद्र क्षायिकसम्यक्त्वरूप हाथी पर चढ़कर ज्योंही युद्धके लिये चले त्योंही अनेक भव्य जीव उनकी वंदना स्तुति करने लगे, अनेक मंगल गाने लगे, कई एक दयारूप आभरण दिखाने लगे और कोइ २ मिथ्यात्वरूपी निंब निमक आदि उखाड उखाडकर फैंकने लगे। इसके सिवा उस समय भगवान जिनेंद्रके आगे दधि, दूर्वा, अक्षत, जलभरित क लश, इक्षुदंड, कमल, पुत्रवती स्त्रियां, दक्षिणभागमें पंक्तिरूपसे खडी हुईं कुमारियां, वामभागमें मेघ गर्जनाका आर उन्नत सांडोंका शब्द, दक्षिण भागमें मोरों पकडों आदि महाशूरवीरोंके शब्द और जिस दिशामें जाना था उस दिशाका शांत हो जाना आ- दि अनेक उत्तमोत्तम शकुन हुये।

राजा मकरध्वजकी आरसे सञ्ज्वलन नामका गुप्तचर भग वान जिनेंद्रके नगरमें रहता था आर भगवान जिनेंद्रका स्था पका सब प्रकारका हाल राजा मकरध्वजके पास पहुचाता था जिससमय उसने वडे ठाटबाटसे भगवान जिनेंद्रको राजा मकर- ध्वजसे युद्ध करनेकेलिये जाता देखा वह मनही मन इसप्रकार विचारकर कि 'अब मेरा यहां रहना ठीक नहीं' शीघ्र ही राजा मकरध्वजके पास पहुचा और प्रणाम कर बोला—

"कृपानाथ ! अपने सम्यग्दर्शनरूप सुभटको आगेकर महा-तेजस्वी प्रचडशक्तिके धारक राजा जिनेंद्र हम लोगोंके नाशके-लिये यहा आ रहे हैं इसलिये मैं तो किसी निरापद स्थानको जा रहा हू क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि "यदि एक ग्रामके त्यागसे किसी देशकी रक्षा होती हो तो उस ग्रामका, कुलके त्यागनेमें ग्रामकी रक्षा होती हो तो उस कुलका, किसी एक व्य-क्तिके त्यागसे कुलकी रक्षा होती हो तो उस व्यक्तिका और जिसपृथ्वीपर अपना रहना हो उस पृथ्वीके त्यागसे यदि अपनी रक्षा होनी हो तो उस पृथ्वीका विद्वानोंको सर्वथा त्याग करदेना चाहिये । सो महाराज ! अब यहा मेरी रक्षा होनी कठिन है इसलिये इस पृथ्वीका त्याग ही मेरेलिये हितकारी होगा।"

सज्वलनकी इसप्रकार भीरुताभरी वाणी सुनकर मकरध्वजको बडा गुस्सा आया वह मारे क्रोधके ओठोंको डसता हुआ बोला—

सज्वलन ! ऐसे डरकी क्या बात है खबरदार ! यदि फिरसे ऐसा कहा तो समझलेना अभी मैं तुझे निश्शेष कर-डालूगा। अरे !

दृष्ट श्रुत न क्षितिलोकमध्ये मृगा मृगेंद्रोपरि सचलति।
विधुतुदस्योपरि चद्रमोको किं वै विडालोपरि मूषकाः स्यु ॥
किं धार्तेयोपरि काद्रवेया किं सारमेयोपरि लवकर्णा :
किं वै कृतातोपरि भूतवर्गा, किं कुत्र श्येनोपरि वायसाः स्युः ॥

अर्थात्—क्या कभी मृग सिंहोंपर, चद्रमा और सूर्य राहु-पर, मूषे विलावपर, सर्प गरुडोंपर, शशा
राजपर और पक्षी श्येन (बाज) पर भी

हुये देखे सुने गये हैं ? अरे ! क्या नृकीट जिनराज भी विपुल शक्तिके धारक चक्रवर्ती मकरध्वजके वा उसके कुटुंबके ऊपर वार कर सक्ता है ? कभी नहीं'' इसकेबाद मकरध्वजने मोहको अपने पास बुलाया और कहा-

''मोह ! यदि आज मैं राजा जिनेंद्रको संग्राममें न जीत लूंगा तो आज ही समुद्रमें जाकर बडवानलकेलिये अपने शरीरकी बलि दे दूंगा ! क्या जिनराज मेरे सामने भी कोई चीज है ?'' उत्तरमें मकरध्वजकी प्रशंसा करते हुये मोह बोला-''कृपानाथ ! आप ठीक कह रहे हैं मैंने आज तक कोई ऐसा मनुष्य ही देखा सुना नहीं जो आपको जीतकर जयलक्ष्मी प्राप्त कर सुरक्षितरूपसे अपने स्थानपर लौट गया हो क्योंकि आपकी ख्याति है-

हरिहरपितामहाद्या बलिनोऽपि तथा त्वया प्रविध्वस्ता ।
त्यक्तत्रपा यथैते स्वांके नारीं न मुंचंति ॥

अर्थात्-बलवान हरिहर ब्रह्मा आदिको भी आपने अपना आज्ञाकारी बनालिया है इसीलिये निर्लज्ज हो उन्हैं गौरी आदि स्त्रिया धारण करनी पडी हैं। तथा यह भी आप समझलें प्रथम तो राजा जिनेंद्र संग्राममें आपके सन्मुख पडेगा ही नहीं, कदाचित पड भी जाय तो उसे, माकलामें जिकड़कर विचाररूप कैद खानेमें पटक दिया जायगा जिससे कि सर्वथा आपका सेवक हो जायगा।'' मंत्री मोहके इसप्रकार अनुकूल वचन सुनकर शीघ्र ही राजा मकरध्वजने वहिरात्मारूपी वंदीको बुलाया और उसे यह कहकर कि ''अरे वहिरात्मन् ! यदि तू मुझे राजा जिनेंद्रका साक्षात्कार करा देगा तो मैं तेरा असीम सन्मान करूंगा'' अपने

मसे अंकित एक कटिसूत्र (चंद्रहार) देकर शीघ्र ही राजा नराजके पास भेज दिया। वदी भी स्वामीकी आज्ञा और मानके प्रलोभनसे शीघ्र ही राजा जिनेंद्रके पास पहुचा और णाम कर बोला—

" राजन्! चक्रवर्ती महाराज मकरध्वज मयचतुरग सेनाके ना पहुचे हैं। आपने यह अच्छा नहिं किया जो महाराज मक-ध्वजके साथ युद्ध करनेका प्रण ठान लिया। महाराज! क्या आप नहिं जानते? चक्रवर्ती मकरध्वजके सर्वत्र सेवक मोजूद हैं? कहीं आप चले जाय बच नहिं सकते। यदि आप यह चाहें कि मकरध्वजसे छिपकर हम स्वर्ग चले जाय तो वहा महेंद्र आपको नहि छोड सकता, यदि आप नरक जाय तो वहा फणींद्र आपको मार डालेगा अथवा यदि यह चाहें कि आप समुद्रमें प्रवेशकर अपनी जान बचालें सोभी ठीक नहीं है क्योंकि समस्त समुद्रके जलको सुखाकर वहा भी मकरध्वज आपको प्राणरहित करदेगा। वस अधिक बोलनेसे क्या लाभ? यदि आप सग्रामके अभिलाषी हैं तब तो आप चक्रवर्ती मकरध्वजके प्रचड धनुषसे छोडी हुई वाण वर्षाको सहन करें और यदि आपको सग्रामकी लालसा न हो तो उनका सेवक होना स्वीकार करें और सुखसे रहैं। राजन्! चक्रवर्ती महाराज मकरध्वजने अपने वीरोंकी नामावली मुझे देकर यह पूछा है कि राजा जिनेंद्रकी सेनामें कौन तो इद्रियोंका विजय करनेवाला वीर है ओर कौन दोष भय गारेव व्यसन दु-ष्परिणाम मोह शल्य आस्रव मिथ्यात्व आदिके जीतनेवाला सुभट है? और भी जुदे जुदे [illegible] गिनाये जाय जो

जो आपकी सेनामें वीर सुभट हों उनके नाम बतलाइये। अथवा महा राज मकरध्वजको नमस्कार कीजिये।" बंदी बहिरात्माके इन कठिन वचनोंको सुन कर सुभट सम्यक्त्वको बड़ा क्रोध आया उसने बहिरात्माको ललकार कर कहा–

"रे बंदी! वृथा क्यों बक रहा है? जा, अपने स्वामीसे कहदे मैं (सम्यक्त्व) मिथ्यात्वसे युद्ध करूंगा, पांच महाव्रत पांच इन्द्रियोंसे, केवलज्ञान मोहसे, शुक्लध्यान अठारह दोषोंसे, तप आस्रवसे, सातनत्त्व सात भयोंसे, श्रुतज्ञान अज्ञानसे, प्रायश्चित तीनों शल्योंसे, चारित्र अनर्थदंडसे और दया सात व्यसनोंसे, युद्ध करेंगे अधिक क्या तक कहा जाय हमारे दलके लाखों नरेंद्र तुम्हारे दलके राजाओंके साथ युद्धार्थ सन्नद्ध बैठे हुये हैं।" जब सुभट सम्यक्त्व यह अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तो पीछे से भगवान् जिनेंद्रने कहा -

बंदी! यदि तू आज मुझे संग्राममें राजा मकरध्वजका साक्षात्कार करा देगा तो मैं तुझे अनेक देश मंडल अलंकार और छत्र आदि प्रदान कर दूंगा॥" उत्तरमें बंदीने कहा

राजन्! यदि क्षणभर भी आप स्थिर रह सकेंगे तो भय मोहके राजा मकरध्वजको अवश्य देख सकेंगे।" बहिरात्माके अहंकारपरिपूर्ण वचनोंसे सुभट निर्वेगने क्रोधके आवेशमें आ कर कहा–

"रे मूर्ख! क्यों इतने अहंकारके वचन बोल रहा है? याद रख! जरा भी अब कुछ कहा तो अभी तुझे यमलोकका मार्ग दिखलाऊंगा।" निर्वेगकी इस फटकारके उत्तरमें बंदी बोला–

यस निर्वेग ! वस ! अधिक न बोलो ऐसी किसमें सामर्थ्य है ? जो मुझे प्राणरहित करदे ?" वदीके मुखसे इन वचनोंके निकलनेकी ही देरी थी कि निर्वेग देखते देखते उठकर खडा होगया और शिर मूडकर एव नाक काटकर वदी वहिरात्माको सभाभवनसे बाहिर निकाल दिया। निर्वेगके इस क्रूर वर्तावसे वहिरात्माको वडा क्रोध आया और वह यहकर कि–

"निर्वेग ! यदि मै तुझे चक्रवर्ती मकरध्वजके हाथसे यमलोकका पथिक न वना दू तो मुझे स्वामीका परमद्रोही ही समझना" शीघ्र ही राजा मकरध्वजके समीप चल दिया। वदीको भयानक रूपमें आता देख राजा मकरध्वजकी सभाके मनुष्य 'अरे वदी ! तेरा क्या होगया ?' कहकर अट्टहास्य करने लगे। उत्तरमें चिढकर वदीने कहा–

हसते क्या हो ? इससमय मेरी जैसी अवस्था हुई है थोडी देरवाद आपकी भी ऐसी ही होजायगी क्योंकि यह नियम है जिस कार्यका जैसा प्रारम होता है उसीके अनुसार वह समाप्त होता है आगे होनेवाले कार्यके शकुन बहुत खराब हुये हैं इसलिये यह कार्य निर्विघ्नरूपसे समाप्त हो सकेगा यह निश्चयसे नहिं कहा जा सकता। अब यदि शक्ति है तो युद्ध करिये अन्यथा स्वदेशका परित्यागकर विदेशका आश्रय लीजिये।" वदीके ऐसे वचन सुन राजा मकरध्वजने पूछा–

भाई वदी ! राजा जिनेंद्रका क्या मतव्य है ? क्या वह कहता है ? सो तो कहो। उत्तरमें वदी वोला–

स्वामिन् ! क्या देखकर भी नहिं देखते हो ! कृपानाथ !

कोऽसिमल्लोघे शिरसि सहते य पुमान् वज्रघात
कोऽस्तीदृग्यस्तरति जलधिं बाहुदण्डैरपार ।
कोऽस्त्यस्मिन् यो दहनशयने सेवते नाप्यनिद्रा
ग्रासैर्ग्रासैर्गिलति सतत कालकूट च कोऽपि ॥
सतप्त रसमायस पिबति क यो याति कालगृह
यो हस्त भुजगानने क्षिपति वै क सिंहदृष्ट्रान्तरे ।
क शृग यममाहिष निजकरे उत्पाटयत्याशु वै
कोऽस्तीदृक् जिनसमुखो भवति य सग्राममूर्ध्नि पुमान् ॥

अर्थात्–जिसप्रकार शिरमें वज्रका प्रबल आघात सहना, भुजाओंसे विशाल समुद्रका तरना, अग्निशय्यापर लेटकर सुखसे निद्रा लेना, हलाहल विषका ग्रास ग्रासरूपसे निगलना, अत्यत सतप्त लोहके रसका पीना, यमराजके घरका जाना मरना, भय कर सर्पके मुखमें और सिंहकी डाढों तले हाथका देना और अपने हाथसे यमराजके भैंसेका सींग उखाडना असाध्य है-महासाहसी भी पुरुष इन बातोंको नहिं कर सकता उसीप्रकार ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं जो रणभूमिमें राजा जिनेंद्रके सामने ठहर सके इसलिये कृपानाथ! राजा जिनेंद्रको आप मामूली राजा न समझें अचिंत्य शक्तिका धारक वह वीरोंका शिरताज है। आपके लिये जो उसने कहा है उसके पुन कहनेसे शरीर कपायमान होता है इसीलिये मैं उन वचनोंका पुन प्रतिपादन नहिं कर सकता।" राजा मकरध्वजने ज्योंही इसप्रकार बहिरात्माके वचन सुने मारे क्रोधके उनके नेत्र लाल होगये, मुख काला पड गया, शरीर थर थर कापने लगा, कल्पातकालमें जिसप्रकार सीमाका उल्लघनकर समुद्र आगे

बढजाता है राहु और शनीचर सहसा उदित होजाते हैं एवं निक-राल पावककी ज्वाला तीव्ररूपसे बढ निकलती है उसीप्रकार राजा मकरध्वज शीघ्र ही जिनराजकी ओर चल पड़ा। वह थोडी ही दूर पहुचा था कि इतनेमें ही मार्गमें सूखे वृक्षपर रोता हुआ काक, पूर्व दिशाको बहुतसे काकोंकी पंक्तिका जाना, सीधी ओरसे बाईं ओर सर्पका चला जाना, अग्निका लग जाना, गधा और उल्लूके निंदित शब्दोंका होना, शूकर शशा गोहका सामने दीखना, शृगालोंके भयङ्कर शब्द सुनना, कान फटफटाते हुये कुत्तेका देखना, सामने रीता घडा पडना, अकालवर्षा, भूमिका कंपना और उल्कापात आदि महानिकृष्ट अपशकुन हुये। अपशकुनोंका वैसा होना देख यद्यपि मित्रवर्गने राजा मकरध्वजको संग्रामसे बहुत रोका परंतु उसने किसीकी भी नहिं सुनी वह चलता ही चला गया। जिससमय राजा मकरध्वजकी सेना चली उससमय दिशा चल विचल हो उठी, समुद्र खलभला उठा, पातालमें शेषनाग कंपित होगया, पृथ्वी घूम निकली, और सर्प विष उगल निकले। उससमय पवनके समान शीघ्रगामी अश्वोंसे, मत्त हाथियोंसे, ध्वजा चमर और शस्त्रोंसे समस्त आकाश आच्छन्न होगया और पटह मृ-दंग और भेरीके शब्दोंसे तीनों लोक शब्दायमान होगये। अ-श्वोंकी टापोंसे उडे हुये रजसे और छत्रोंसे गगन मंडल ढक गया। शूरवीरोंसे पृथ्वी व्याप्त होगई। रथोंके और मारो पकडो आदि वीरोंके भयंकर शब्दोंसे एक सैनिक दूसरेकी बात भी न सुन सकता था। जिनराज और कामदेवकी सेनाका सज्वलनने ज्योंही भयंकर कोलाहल सुना वह मनमें विचारने लगा—

बहिरात्मा, इधर तो मकरध्वजको जिनराजकी सेनाके वीरोंका परिचय करा रहा था और उधर मकरध्वजकी सेना आगे बढी एव दोनों सेनाओंकी आपसमें मुठभेड होगई । सग्रामके अभिलाषी वीरोंके तीर भाले फरसा गदा मुद्गर नाराच भिंडिमाल हल मूसल शक्ति तलवार चक्र वज्र आदि शस्त्रोंसे एव इनके सिवाय और भी दिव्य शस्त्र अस्त्रोंसे घोर युद्ध होना प्रारभ होगया । उससमय बहुतसे सुभट नि शेषप्राण हो गिर गये, बहुतसे मूर्छित होगये और किसीरीतिसे मूर्छाके दूर हो जानेपर भूमिका सहारा लेकर वहीं पडे रहगये । बहुतोंका हसना बद हो गया । अनेक निर्भय हो आगे बढने लगे । कई सग्रामसे भीत हो कातर होगये । अनेकोंने शस्त्रोंके तीक्ष्ण आघातसे वीरगतिका लाभ किया । बहुतसे धीरवीर शस्त्रोंके घातोंसे शरीरके अवयवोंके छिन्न भिन्न होजानेपर भी बराबर धीरतासे शत्रुओंके साथ युद्ध ही करते रहे । अनेक चरण भुजा आदिके कट जानेके कारण रुधिरधारासे तलबतल होगये, इस लिये उससमय वे पुष्पितपलाशकी तुलना करने लगे और बहुत से शिरोंके कट जानेसे राहुके समान जान पडने लगे इसलिये जिससमय वे युद्ध कर रहे थे उससमय ऐसा जान पडने लगा मानो साक्षात् अनेक राहु सूर्योंके साथ युद्ध कर रहे हैं। बस जिससमय युद्धका यह भयकर रूप हो रहा था उससमय राजा जिनेंद्रके अग्रभागमें रहनेवाले वीर दर्शनका और मिथ्यात्वका आपसमें भिडाव होगया एव अपने प्रचड पराक्रमसे मिथ्यात्वने देखते २ सग्राममें दर्शनका मानभग कर दिया । दर्शनवीरका मान भग

होते ही मेद मास आदि रूप कीचडसे और रुधिररूपी जलसे भरित, अश्वोंके खुररूपी सीपोंसे आछन्न, वीरोंके मुकुटोंमें लगे हुये मोती और महारत्न रूपी रत्नोंके आकर, मिथ्यात्वरूपी प्रचट वडवानलसे सदग्ध, तलवार छुरी आदि रूप मीनोंसे अभिव्याप्त, केश स्नायु यत्ररूपी शेवालसे पूर्ण, घायल हो जमीनपर गिरे हुये हाथियोंके शरीररूपी जहाजोंसे भूषित और अस्थिरूपी शल्योंसे व्याप्त राजा जिनेंद्रका सैन्यरूपी समुद्र खलबला उठा।

कामदेव और भगवान जिनेंद्रके सैन्यका युद्ध धाराद्यमें बैठकर इद्र और ब्रह्मा भी देख रहे थे। मिथ्यात्वसे ताडित जिससमय भगवान जिनेंद्रका सैन्य चारो ओरसे नष्ट होने लगा—मार्ग छोड कुमार्गकी ओर झुकने लगा और कोई मिथ्यात्वका तो कोई अन्यका शरण टटोलने लगा तो उससमय ब्रह्माने इसप्रकार इद्रसे कहा—

इद्र! जबतक निर्वेगके साथ सम्यक्त्वमीर मिथ्यात्वका आकर सामना न करेगा तबतक जिनेंद्रकी सेनामें शातिका प्रसार होना कठिन है। अच्छा, जरा थोडी देरकेलिये तुम इसीप्रकार स्थिररूपसे बैठे रहना। मैं अभी निशका शक्तिसे मिथ्यात्वके सैकडों खड किये डालता हू। परतु भाई! कदाचित् मैने मिथ्यात्वको मार भी डाला तो इसके पीछे मोह मल्ल आवेगा उसका सामना कौन करेगा? मेरी समझमें ऐसी किसीमें शक्ति नहीं है जो मोह सुभटको जीत सके। क्योंकि कहा भी है—

न मोहाद्वलवान् धर्मो तथा दर्शनपञ्चकः।
न मोहाद् बलिनो देवा न मोहाद्वलिनो नराः॥

न मोहात्सुभट कोऽपि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यथा गजाना गधेभ शत्रूणा स तथैव स ॥

अर्थात्–मोहसे बलवान ससारमें न धर्म है न दर्शन है न देव और मनुष्य हैं और न उसके बरावर कोई सुभट है। विशेष कहा तक कहा जाय जिसप्रकार गजोंमें गधगज बलवान गिना जाता है उसीप्रकार शत्रुओंमें सबसे बलवान मोह शत्रु है।

इद्र ब्रह्माकी वातपर कुछ हसकर बोला-'नहिं ब्रह्मा ! तुम्हारा कहना यथार्थ नहीं। तुम निश्चय समझो मोहका तभीतक पौरुष है जबतक केवलज्ञानरूपी प्रचड सुभट उसके सामने आकर नहिं डटता। क्योंकि कहा भी है—

तावद्गर्जति फूत्कारै काद्रवेया विषोत्कटा ।
यावन्नो दृश्यते शूरो वैनतेय. खगेश्वर ॥

अर्थात् विषसे उत्कट सर्प तभीतक फुकार सकता है जबतक उसके मानको मर्दन करनेवाला गरुडपक्षी आकर सामने उपस्थित नहिं होता।

ब्रह्मा–खैर भाई इद्र ! कदाचित् वीर केवलज्ञानने मोहको पछाड भी मारा तो कामदेवके मनरूपी मतगका कौन सामना करेगा ? किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है कि सपाटेसे रूरते हुये मनरूपी मतगको कोई रोक सके। इसलिये राजा जिनेंद्रने जो कामदेवके साथमें युद्ध ठाना, यह बडा अनुचित किया। भाई ! राजा कामदेवके पौरुषको हमलोग तो खूब देखे सुने और अनुभव किये बैठे हैं अरे ! जिनको राजा कामदेवने वश किया है उनका मैं खुलासारूपसे क्या नाम बतलाऊँ तथापि मै अपबीती एक कथा सुनाता हू। सुनो–

एकदिन शकर विष्णु और हमने युद्धमार्गसे कामदेवको पराजित करनेका विचार किया इसलिये हम तीनों मिलकर उससे युद्ध करनेकेलिये चलदिये। हममेंसे महादेवने कहा अरे! मेरा नाम मदारि-कामका वैरी है समस्त ससार मुझे इस ही नामसे पुकारता है इसलिये काम मेरा क्या करसकता है?" बस महादेवके वचनसे हमें भी अहकार होगया और आगे आगे महादेव और पीछे पीछे हम तीनों मिलकर कामके घरकी ओर चलदिये। ज्योंही महादेव कामके घर पहुचे और दोनोका आपसमें साक्षात्कार हुआ कामने एक ऐसा वाण तककर मारा जो महादेवके वक्षस्थलमें लगा और उसकी भयकर चोटसे मूर्छित हो वे धराशायी हो गये। वहापर राजा हिमालयकी पुत्री पार्वती मौजूद थी ज्योंही उसने महादेवकी वैसी दशा देखी शीघ्र ही उनके पास आई अपने अचलसे हवा ढोलने लगी एव अपने मदिरमें लाकर शीतल जलके छींटे मारकर उन्हें होशमें लाई। पश्चात् कामके वाणसे पीडित होकर उन्होंने पार्वतीको स्वीकार कर लिया और उसे अपना आधा अग बनाकर अर्धनारीश्वरकी ख्याति लाभकी। विष्णुको भी दो वाण मारकर कामदेवने जमीनपर गिरा दिया। ज्योंही यह बात कमलाने सुनी वह दौडती २ कामदेवके पास आई और उसके पैरोंमें गिरकर 'हे देव? मुझे पतिभिक्षा प्रदानकर अनुगृहीत कीजिये। मुझे विधवा न बनाइये ऐसा निवेदन कर विष्णुको अपने घर ले आई और अनेक उपचार कर उन्हें बचा लिया जिसके कारण कामवाणोंसे पीडित विष्णुने कमलाको अपने वक्षस्थलमें रखलिया और उसदिनसे उनकी कमलापतिके नामसे ससारमें प्रसिद्धि हुई।

विष्णुके समान कामने मुझे भी अपने दो बाणोंसे घाय-लकर दिया उससमय रिप्या-रमा मेरे पास न थी। पीछेसे वह मेरे पास आई। उसने मुझे जिलाकर बडा उपकार किया जिससे मैंने उसे अपनी स्त्री बना लिया। प्रिय इंद्र! तुम विद्वान और योग्य पुरुष हो इसलिये तुम्हें यह असली हाल बतला दिया गया है। मूर्खोंके आगे यह हाल कहना अधिक हानिकारक है क्योंकि ऐसा हाल सुनकर वे हँसना ही अपना परम महत्त्व सम-झते हैं। अच्छा! अब तुम्हीं बताओ जब हम सरीखे बलवान देवोंका भी कामदेवने यह बुरा हाल करडाला तब जिनेश्वरको वह कब छोड सकता है? जिनेश्वर भी तो देव ही कहा जाता है!

इंद्र--भाई ब्रह्मा! तुम्हारा कहना कदाचित् सत्य हो। परन्तु देव होनेपर भी जिनराजमें बडा अतर है। क्योंकि--

गोगजाश्वखरोष्ट्राणां काष्ठपाषाणवाससां।
नारीपुरुषतोयानामंतरं महदंतरं॥

अर्थात् गाय हाथी घोडा गधा ऊटोंमें, काष्ठ पत्थर वस्त्रोंमे ओर नारी पुरुष और जलमें अंतर ही नहीं बडा भारी अंतर है और भी कहा है--

मीनं भुंक्ते सदा शुक्लपक्षाढ्यो गगने गतिः।
निष्कलंकोऽपि चंद्रस्य न याति समतां बकः॥

अर्थात् जिसप्रकार चंद्रमा मीन (राशिविशेष) का धारक शुक्लपक्षका धारण करनेवाला आकाशमें चलनेवाला और निष्क-लंक है उसीप्रकार यद्यपि बगला भी मीन (मछली) का खानेवाला शुक्लपक्ष (पाख) धारण करनेवाला आकाशमें चलनेवाला और

निष्कलंक है तथापि वह कदापि चंद्रमाकी तुलना नहिं करसकता इसलिये अपने समान देव मानकर जिनराजके विषयमें जो यह कहा है कि कामदेव हमारे समान उनका बडा बुरा हाल करैगा, आपकी भूल है। क्योंकि देव होनेपर भी जिनराज आपके समान चचल नहीं वह महाधीर वीर है समस्त व्यसनोंसे रहित है। जीतना तो दूर रहो कामदेव उसका बाल भी वाका नहिं करसकता॥

इसप्रकार आकाशमे तो ब्रह्मा और इंद्रका यह वाद विवाद हो रहा था और उधर वीर सम्यक्त्व सैन्यमडलमें आ कूदा एव अपनी सेनाको छिन्न भिन्न देख पासमें आकर उच्च स्वरसे बोला—

"भाइयो! डरो मत मै आगया। अब तुम्हारा कोई कुछ नहिं करसकता।" इसके बाद जिनेंद्रकी ओर मुडकर बडे अभिमानसे यह प्रतिज्ञाकी कि–

"भगवन्! यदि मै आज मिथ्यात्वको रणमें न छिन्न भिन्न कर डालू तो जो पुरुष चामके पात्रोंमें रक्खेहुये घी तेलके खानेवाले है, क्रूरजीवोंके पोषक, रात्रिभोजी, व्रत और शीलोंसे रहित, निर्दयी, गैहू तिल आदि हिंसाजनक पदार्थोंके सग्रह करनेवाले, जूआ आदि सात व्यसनोंके सेवक, कुशील और हिंसाके प्रेमी, जिनशासनकी निंदा करनेवाले, क्रोधी कुदेव और कुलिंगधारियोंके भक्त, आर्त और रौद्रध्यानके धारक, असत्यवादी, सदा दूसराकी चुगली करनेवाले, ऊमर कठूमर आदि पाचों उदबरोंके भक्षक, और महाव्रतको धारण कर फिर उसे छोडनेवाले हैं उनके समान पातकी समझा जाऊ।" इसके बाद समाममें जा उसने मिथ्यात्व सुभटको ललकार कर कहा—

"रे मिथ्यात्व ! अब मैं आगया तेरी करणीका तुझे अभी फल मिला जाता है। मै अभी तेरे मान मतगको खड २ किये डालता हू।" सम्यक्त्वकी यह गर्जना सुन मिथ्यात्वने उत्तर दिया–

'अरे सम्यक्त्व ! जा ! जा !' क्या तेरा मरण बिलकुल समीप आचुका है जो तू यह बात कहरहा है ? जानता है मेरा नाम मिथ्यात्व है। याद रख ! जैसा मैने दर्शनको अभी आपत्तिके जालमें फँसाया है और उसे रण छोडकर भागना पडा है यदि तेरा भी वैसा हाल न करू तो मुझे स्वामी मकरध्वजका सेवक न समझ द्रोही समझना।"

सम्यक्त्व–अरे नीच ! वृथा क्यों गाल बनाता है। यदि तुझमें शक्ति है तो उसे दिखा । शस्त्र छोडकर मुझपर वारकर"

बस सम्यक्त्वका इतना कहना ही था कि मिथ्यात्वने शीघ्र ही तीन मूढतारूप बाणोंकी वर्षा करनी शुरू करदी । सम्यक्त्व भी कुछ कम न था उसने भी षट् अनायतन बाणोंसे मिथ्यात्वके बाणोंको बीचमें ही खडित कर डाला । इसके बाद मिथ्यात्वने क्रोधके आवेशमें आकर शकारूपी शक्तिको जो कि राजा कामदेव के भुजबलसे कमाये हुये धनकी रक्षा करनेवाली सर्पिणी, शत्रु राजाकी सेनाके भक्षण करनेवाली यमराजकी जिह्वा, क्रोधरूपी भयकर अग्निकी ज्वाला और विजय लक्ष्मीके वश करनेकेलिये चलने फिरनेवाली मूर्तिमती मत्र सिद्धि जान पडती थी, वीर सम्यक्त्वपर छोड दी । सम्यक्त्व भी तयार बैठाथा ज्यों ही उसने शका शक्तिको अपनी ओर आता देखा अपनी प्रबल निश्शका शक्तिसे उसे बीचमें ही छिन्न भिन्न कर डाला । जब मिथ्यात्व

ने कांक्षा आदि और भी अनेक तीक्ष्ण शस्त्रोंका प्रहार किया तो सम्यक्त्वने निष्कांक्षित निर्विचिकित्सा आदि विरोधी उनके शस्त्रोंसे उनका परिहार कर अपनी रक्षाकी । इसप्रकार भयकर और समस्त लोकको आश्चर्य करानेवाले युद्धके होनपर भी उनमेंसे जब किसी की भी हार जीत न हुई तब सम्यक्त्वने यह विचारकर 'कि अब क्या करना चाहिये ! यह भी परम बलवान योधा है सामान्य शस्त्रसे इसका वश होना कठिन है' युद्धका कौशल दिखलानेके लिये शीघ्र ही अपने अमोघ परमतत्त्वरूप खड्गको हाथमे लेलिये। और उसे फेंक कर देखते देखते ही मुख्य सुभट मिथ्यात्वको जमीनपर गिरा दिया । बस इधर तो मिथ्यात्वकी यह दशा हुई और उधर राजा कामदेवके कटकमें भिर्रा पडगया । जिसप्रकार सूर्यके भयसे अधकार, गरुडके भयसे सर्प, सिहके भयसे हाथी आदि जहा तहा दौडते फिरते हैं उसीप्रकार सम्यक्त्वके भयसे शत्रुपक्षके सुभट जहा तहा दौडने लगे । उससमय यह देखकर आकाशमें जो इद्र ओर ब्रह्मा बेठे थे वे परस्पर बार २ यह कहकर कि 'देखो सम्यक्त्वसे कामदेवकी सेनामें कैसा भिर्रा पडगया '' सम्यक्त्वकी प्रशसा करने लगे और राजा जिनेंद्रकी सेनामें जहा तहा आनदसे जय जय' ही शब्द सुने जाने लगे । अपनी सेनाका यह हाल बेहाल देख कामदेव बडा ही घबडाया और उसने शीघ्र ही मत्री मोहको अपने पास बुलाकर इसका कारण पूछा उत्तरमें मोहने कहा

कृपानाथ ! हमारी सेनाका मुख्य सुभट जो मिथ्यात्व था उसे जिनराजके सुभट सम्यक्त्वने धराशायी बना दिया है इसलिये हमारी सेनाके पैर उठ गये हैं वह इधर उधर भागती

ओर शत्रुपक्षमें ' जय जय ' का उन्नत कोलाहल हो रहा है ।''

राजा मकरध्वज और मोहकी तो आपसमें इधर यह बात होरही थी और उधर सुभट मिथ्यात्वकी स्त्री नरकगति वैतरणी नदी में आनंदसे क्रीडा कर सात नरकरूप सतखने मकानमें बैठी चैन की गुड्डी उडा रही थी कि अचानक ही उसके पास नरकगत्यानुपूर्वी नामकी सखी पहुची और वह इसप्रकार बोली—

''सखी ! क्या तुमको कुछ समाचार नहिं मिला है जो बडे आनंदसे बैठी हुई मौजके श्वास ले रही हो । अरे तुम्हारे भाग्यका सितारा जीवनसर्वस्व सुभट मिथ्यात्व यमराजकी गोदका खिलौना होगया ।'' बस इतना सुनना ही था कि आंधीसे कपाये गये केलाके वृक्षके समान रमणी नरकगति बेहोश हो जमीनपर गिर पडी । नाना उपचारोके करनेसे थोडी देर बाद जब उसकी चेतना वापिस लोटी तो वह रुदन करती हुई नरकगत्यानुपूर्वीसे कहने लगी—

''हा ! प्रिय सखी ! आलिंगनके समय स्वामी और मेरे बीचमें पडकर कहीं विरह न करदे इसी भयसे कभी मेने अपने कठमें हार भी न पहिना था । परतु हाय ! आज नदी सागर और पर्वत सरीखे विशाल पदार्थोका अतर पडगया । न जाने मेरा पति कहा चला गया ? इस विरहका क्या ठिकाना है ? मै अनाथ हो गई ! हा ! मेरापति मुझे प्रथम वय और वर्षाकालमें ही छोडकर चला गया मैं बडी ही अभागिनी हू अब मेरे पतिकी कृपाके विना मेरे यहा कौन आवेगा । हा ! ठीक ही है जब मै लडकी थी तब एक दिन मेरे शरीरमें विधवापनेके चिह्न देखकर किसी नैमित्तिकने मेरे पिता नरकसे यह कहा था कि—

तुम्हारी पुत्री नरकगति चिरकाल तक सौभाग्यवती नहिं रह सकेगी क्योंकि इसकी देहमें बहुतसे अशुभ चिह्न हैं। जब मेरे पिताने उन चिह्नोंके जानेकी इच्छा प्रकट की तो नैमित्तिकने विकराल दंत आदि समस्त चिह्न कह डाले थे। अब वे सब बातें मुझे प्रत्यक्ष दिखलाई दे रही हैं।" नरक गतिका हृदयविदारक विलाप सुन उत्तरमें नरकगत्यानुपूर्वीने समझाते हुये कहा—

सखी! क्यों वृथा विलाप कर रोती है! सुन विद्वानोंका वचन है—

नष्ट मृतमतिक्रांत नानुशोचति पंडिता.।
पंडिताना च मूर्खाणा विशेषोऽय यत स्मृत ॥

अर्थात् इष्ट यदि नष्ट होजाय, मरजाय, वा बिछुड जाय तो चतुर लोग उसके लिये शोक नहिं करते क्योंकि विद्वानोंमें और मूर्खोंमें इतना ही अंतर माना गया है दूसरे-जो पुरुष दूसरेके लिये शोक करता है उसे दो अनर्थोंका सामना करना पडता है अर्थात् एक तो वह शोकजन्य दु ख भोगता ही है दूसरे रोने चिल्लानेसे जो शरीरमें संताप होता है उसका दु ख भोगना पडता है इसके सिवा तेरा पति तो महाबलवान वीर सम्यक्त्वके हाथसे मरकर सुमार्गमें न जाकर अपने अभीष्ट कुमार्गमें ही प्रविष्ट हुआ है तू क्यों वृथा शोक मनाती है?"

इसप्रकार सखी नरकगत्यापूर्वी तो इधर रमणी नरकगति को आश्वासन देकर शांत कर रही थी और उधर सुभट मोह अपने स्वामी राजा मकरध्वजके चरणोंको प्रणामकर सैन्यमंडलको धैर्य बधाता हुआ जहांपर केवलज्ञान आदि महाराज जिनेंद्रके

हाथका धनुष खड २ होकर जमीनपर गिरपडा । जब मोहने केवलज्ञानपर आठ मदरूप हाथी पेले तो केवलज्ञानने अपने निर्मद हाथियोंसे उन्हें हटाया एवं पश्चात् उपशमरूप खड्गसे उन्हें विध्वस्त कर डाला । जब मोहने देखा कि केवलज्ञानरूप वीरको वश करना टेढी खीर है तो उसे बडा क्रोध आया इसलिये उसने देव मनुष्य और भुजगोंको कपानेवाली पृथ्वी और सागरको चलविचल करनेवाली कर्मप्रकृतिरूप बाणावली छोडी । ज्योंही प्रकृतिरूप बाणोंकी वर्षा जिनराजकी सेनाके सुभटोंने देखी वे मारे भयके थर थर कापने लगे किंतु सुभट केवलज्ञानने जरा भी भय न खाया। उसने शीघ्र ही पाच प्रकारके चारित्ररूपी दिव्य शस्त्रोंसे उन्हको चूर चूर कर डाला और मोह मल्लको एक ही हाथमें जमीन पर गिरा कर मूर्छित करदिया। जब थोडीदेरके बाद फिर उसकी मूर्छा जागी तो वह अनाचाररूप तलवारको हाथमें लेकर केवल ज्ञानकी ओर झपटा । केवलज्ञानने भी अपने हाथमें अनुकम्पा रूप तलवार लेली और मोहके सामने डटकर निर्ममत्व रूप मुद्गरका ऐसा उसके शिरमें आघात किया कि उसका शिर फट गया और चीत्कार करता हुआ जमीनपर सदाके लिये गिर पडा। वहीं बहिरात्मा युद्धकी समस्त दशा देख रहा था ज्योंही उसने मोहको जमीनपर गिरता हुआ देखा वह शीघ्र ही राजा मकरध्वजके पास पहुचा और इसप्रकार कहने लगा--

'कृपानाथ! तीनलोकका जीतनेवाला महा सुभट मोह समरांगणमें काम आचुका और जिनेंद्रके सैन्यने आपका समस्त सैन्य छिन्न भिन्न करडाला इसलिये मेरी प्रार्थना है कि इस अवसरको

छोड़कर आप कहीं अन्यत्र चले जाय ।" वही बहिरात्माके वचनोंका राजा मकरध्वजने तो कुछ भी जवाब न दिया किंतु महाराणी रति उसके वचनोंकी प्रशसाकर बोली—

"प्राणनाथ ! वही बहिरात्माका कथन यथार्थ है इसलिये जिस रीतिसे बने हमें यहासे जल्दी चला जाना चाहिये । स्वामिन् ! जब अन्यत्र चलेजानेपर विना कष्टके हमारा कल्याण होता है तब वृथा अभिमानकर यहा रहनेसे क्या लाभ ? इसलिये मेरी भी यही प्रार्थना है कि अब हमें यहा क्षणभर भी न ठहरना चाहिये शीघ्रही किसी निरापद स्थानपर चला जाना चाहिये । "जब राजा मकरध्वज रतिके वचनोंसे भी राहपर न आये तो प्रीतिको बडा क्रोध आया और वह खुले शब्दोंमें बोली -

प्यारी सखी रति ! यह क्या वृथा कह रही हो ? हमारे प्राणनाथ महा आग्रही हैं अब तू निश्चय समझ । राजा जिनेंद्रके हाथमें जय लक्ष्मीका जाना ओर हमारा विधवा होना टल नहिं सकता । कहा भी है—

> वचस्तत्र प्रयोक्तव्य यत्रोक्त लभते फल ।
> स्थायी भवति चात्यत राग शुक्ल. परे यथा ॥

अर्थात् जिसप्रकार सफेद वस्त्रपर राग (रग) खूब चढता है उसीप्रकार जहापर वचनोंके बोलनेसे राग (गाढ प्रेम) हो ओर उनसे कुछ फल निकले-असर पडे वहींपर वचन बोलना ठीक है । महाराज मकरध्वजके समीप तेरे शुभ भी वचनोंका आदर नहिं हो सकता ।"रतिके कडे शब्दोंसे अबकी राजा मकरध्वजके ऊपर कुछ असर पडा और वे क्रोध न कर इसप्रकार शात वचनसे रतिको समझाने लगे—

प्रिये ! तुम्हारा कहना यथार्थ है परंतु मेरा तो सुनो जिसने अपने पैने बाणोंमे सुर असुर मनुष्य आदि सबका मान गलित कर दिया। जिसकी आज्ञाके सामने बडे २ इन्द्र भी मस्तक झुकाते हैं सो क्या वह चक्रवर्ती मैं अल्प शक्तिवाले जिनेंद्रसे भयभीत हो पीठ दिखाकर भागूगा ? नहीं, ऐसा कभी नहीं होसक्ता ? तुम स्त्री हो और स्त्रिया स्वभावसे ही भीत होती हैं इसलिये मैं कभी भी तुम्हारी बात नहिं मान सकता आज ही मैं जाकर जिनेंद्रका घमड खड २ किये देता हू।" इसप्रकार किसीकी भी बात न मान चक्रवर्ती मकरध्वज अपने पैने बाणोंको धनुषपर चढाता हुआ मनरूपी मतगपर आरूढ हो समरागणमें आ पहुचा। एव जिनेंद्रके सम्मुख आ कहने लगा—

रे जिन ? पहिले तू मेरे साथ लड जब मुझे भी जीत ले तब मुक्तिवनिताके साथ विवाहकी इच्छा करना उससे पहिले तुझै मुक्ति वनिताका समागम होना कठिन है।" भगवान जिनेंद्र मोक्षरूपी विशाल सरोवरके राजहस थे। साधुरूपी पक्षियोंके विश्राम स्थान, मुक्ति वधूके अभिलाषी, कामरूपी समुद्रको मथन करनेकेलिये मदराचल, भव्यरूपी कमलोंकेलिये सूर्य, मोक्षरूपी द्वारके लिये कुठार, दुर्वार सर्पकेलिये गरुड, साधुरूपी रात्रिविकासी कमलोंकेलिये चद्रमा और मायारूपी हस्तिनीकेलिये मृगेंद्र थे। भला वे निकृष्ट कामदेवकी धमकीमें कब आसकते थे इसलिये उन्होंने मकरध्वजके वचन सुनकर कहा—

भाई ! इन व्यर्थकी बातोंमें क्या है ? यदि सामर्थ्य है तो आ ! अथवा क्यों तू मेरी बाणरूपी जाज्वल्यमान अग्निमें गिरकर

भम्म होना चाहता है ? जा! जा!! अपने प्राण बचाकर ले जा! मेरे सामने न पडनेसे ही तेरा कल्याण है।"

कामदेव महा अभिमानी था भला वह जिनेंद्रके ऐसे अहकारपूर्ण वचन कब सुन सकता था। ज्यों ही उसने भगवानके वैसे वचन सुने जलकर खाक हो गया और नेत्रोंको लाल २ करता हुआ बोला--

"रे जिन! क्यों घमडमें चूर हो रहा है ? क्या तुझे मेरे चरित्रका पता नहीं ? अरे! मेरे ही भयसे इद्र स्वर्ग चला गया, धर्णेंद्र नरक गया, सूर्य छिपकर मेरुकी प्रदक्षिणा देने लगा और ब्रह्मा भी मेरा सेवक होगया है। विशेष कहातक कहा जाय समस्त लोकमें कोई भी मेरा वरी नहीं रहा है।"

जिनराज- बस रहने दो अधिक अपने मुहसे अपनी प्रशसा नहीं शोभती। बूढे टेढे और मूर्ख मडल पर ही तेरा महत्त्व जम गया होग। मुझ सरीखा अभी तक कोई मनुष्य न मिला होगा। याद रख यदि तेरे मनमें इसबातका घमड है कि मेरे समान मनुष्य भी तेरा कुछ नहिं कर सकता तो ले तयार हो जा, अपना पराक्रम बतला! मैं तेरे सामने खडा हुआ हू।"

मगर वह तो उग्र प्रकृतिका था ही, ज्योंही उसने जिनराजके वचन सुने उसका क्रोध उबल उठा। उसने शीघ्र ही अपना मनमतग, जिसका शुडादड ससार था, चार कषाय चार पैर थे, राग द्वेष दो दात, और आशा निराशा रूप दो लोचन थे, जिनराजपर हूल दिया। जिनराजका भी क्षायिकसम्यक्त्व रूप हाथी कम बलवान न था ज्योंही उसने कामदेवके हाथीको अपनी

आता देखा बीचमें ही रोक दिया और ऊपरसे राजा जिनेंद्रने ऐसा उसके मस्तकपर मुद्गरका हाथ जमाया कि वह चीत्कार करता हुआ तत्काल भूमिपर गिर गया।

प्रधान हाथीके मरने और स्याद्वादरूप भेरीकी गर्जनाके भयकर शब्दश्रवणसे कामदेवके कटकमें खलबली मच गई। जिसप्रकार सूर्यके प्रचडतेजसे अधकार भग जाता है उसीप्रकार पाच महाव्रतोंसे पाचों इद्रिया भयभीत हो भाग गईं। सिंहसे भयभीत हस्तियोंके समान दश धर्मोंके सामने कर्म भी पलायन कर गये। उसीप्रकार साततत्त्वोंके सामने सात भय, प्रायश्चित्तोंके सामने शल्य, आचारोंके सामने आस्रव और धर्म्यध्यान एव शुक्लध्यानके आगे आर्त और रौद्रध्यान भी न टिक सके। महाराणी रति यह सब दृश्य देख रही थी ज्योंहीं उसने अपने स्वामी मकरध्वजका हाथी जमीनपर गिरता देखा और सेनाके पचेंद्रिय आदि सुभटोंका हाल बेहाल देखा उसका हृदय थर २ कापने लगा, वह शीघ्र ही दौडती २ अपने स्वामी मकरध्वजके पास आई और अश्रुपात करती हुई गद्गद कठसे बोली–

"प्राणनाथ ! क्या आप सब बातोंको जानकर भी अजान बन रहे हैं ? आप इतने बुद्धिमान होकर भी क्या नहीं देखते ? स्वामिन् देखिये! आपका समस्त सैन्यमडल छिन्न भिन्न हो चुका और आपका समयपर प्राण बचानेवाला हाथी भी धराशायी हो गया! क्या अब भी कुछ बाकी रह गया है! महाराज ! अब तो आप युद्धकी हौंस छोडदें। आप निश्चय समझें–जिनराज मामूली मनुष्य नहीं है जिसको आप जीत लेंगे, वह प्रचड शक्तिका

घातक वीरोंका शिरताज है। मेरा तो अब आपसे यही निवेदन है कि आप किसी निरापद स्थानका अवलम्बन करें और वहां सुखसे अपने जीवनके शेष दिन वितावें।"

इधर तो राजा कामदेवकी सेनाका यह महाभयकर हाल हो रहा था और उधर सुभट अवधिज्ञान शीघ्र ही राजा जिनराजके पास पहुचा और प्रणामकर इसप्रकार निवेदन करने लगा—

"भगवन्! लग्नकी बेला विलकुल समीप आगई है। युद्धको बढाकर व्यर्थ कालव्यय करना उचित नहीं क्योंकि केवलज्ञानरूपी सुभटने मोहको तो क्षीणशक्ति कर दिया है। अब वह उतना बलवान नहीं जो कुछ विघ्न कर सकै। हाँ! केवल कामदेव सुभट कुछ बलवान अवश्य प्रतीत होता है परतु आपके सामने वह भी कुछ नहीं है। इसलिये अब आप ऐसा काम करिये जिससे एक ही हाथमें दोनोंकी सफाई हो जाय।" बस अवधिज्ञानके ये वचन सुनते ही जिनराजका उत्साह और भी बढ गया। वे शीघ्र ही कामदेवके सम्मुख अपनी समस्त शक्तिसे अड गये और उसे ललकारकर बोले—

"रे काम! घरके अदर स्त्रियोंमें बैठकर ही घमड कर लिया होगा परतु तेरा वैसा करना क्षत्रियोंका धर्म नहीं, कायरोंका है। यदि कुछ वीरता रखता है तो आ-मेरा सामना कर।"

अबके तो राजा कामकी बुद्धि चकराई। वह जिनराजको कुछ भी उत्तर न देकर अपने क्षीणशक्ति घायल मोहसे इसप्रकार मत्र करने लगा—

"भाई मोह! अब क्या करना चाहिये? सेना प्राय सब छिन्न भिन्न हो चुकी, जिनराजका बल बढता ही जाता है। इस:

समय ऐसी कोई उत्तम युक्ति बतलाओ जिससे जिनराजका मान-भग हो और अपना इकछत्र राज्य स्थिर रहा आवे।''

मोह-कृपानाथ! आपके पास परीषहरूपी अमोघ विद्यायें मौजूद हैं आप उनका स्मरण करें उनसे अवश्य आपका जय होगा।'' काम तो यह चाह ही रहा था इसलिये उसने शीघ्रही परीषह विद्याओंका स्मरण किया और वे तत्काल सामने आकर 'देव! क्या आज्ञा है? हमें क्या करना चाहिये? जल्दी कहिये' ऐसा पुकार २ कर कहने लगीं। जब कामने देखा कि विद्यायें सामने खड़ी हैं तो वह उनसे बोला-

''अरी विद्याओ! मेरा वैरी प्रचडशक्तिका धारक राजा जिनराज प्रगट होगया है तुम उसे जीतो और मेरी सहायता करो।''

अपने स्वामीकी आज्ञा पाते ही तीक्ष्ण खड्गकी धारके समान पैने, अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले दंश मशक आदि अनेक शस्त्रोंसे सज्जित शीघ्र ही परीषहरूपी विद्यायें जिनराजके पास गईं और उन्हें चारों ओरसे आच्छन्न कर दुःख देने लगीं। महाराज जिनराजके पास भी विद्याओंका अभाव न था ज्योंही उन्होंने देखा कि चारों ओरसे मुझे परीषहोंने घेर लिया है और अधिक दुःख दे रही हैं शीघ्र ही निर्जरा नामकी विद्याका स्मरण किया वह सामने आकर उपस्थित होगई और जिसप्रकार गरुड़के सामने सर्प इधर उधर भग जाते हैं निर्जरा नामकी अमोघ विद्याके सामने परीषह भी तत्काल विलीन होगईं। इसप्रकार जब कामदेवकी प्रबल भी विद्यायें राजा जिनराजके सामने निरर्थक हो चुकीं तो उनके सामने मनःपर्ययज्ञान आया और नम्रता-पूर्वक बोला-

कृपानाथ ? विवाहका समय बिलकुल समीप आ गया है अब क्या विलंब कर रहे हैं ? भगवन्! सुभट केवलज्ञान द्वारा क्षीण भी किया गया मोह अभीतक जीवित है इसे आप सर्वथा नष्ट कर डालिये। तभी आपका मुक्तिकन्याके साथ विवाह हो सकेगा और मोहके नष्ट होनेसे ही कामदेव भी पलायन कर जायगा। आप मोहको मामूली सुभट न समझें क्योंकि -

मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वदोषाश्च विद्रुता।
छिन्नमूलद्रुमा यद्वद् यथा सैन्य निनायक ॥

अर्थात् जिसप्रकार सेनापतिके नष्ट हो जानेपर सेना लापता हो जाती है उसीप्रकार मोहरूपी बलवान वैरीके नष्ट हो जानेपर जडके नष्ट हो जानेसे वृक्षोंके समान समस्त दोष भी एक ओर किनारा कर जाते हैं फिर वे कभी सामना नहिं कर सक्ते।" भगवान जिनेंद्रने सुभट मन पर्ययके वचन स्वीकार कर लिये और कामदेवसे क्रोधमें आकर वे कहने लगे—

"रे! स्त्रियोंके प्रीतिपात्र काम! जा और युवतियोंके हृदय रूपी सघन कंदराओंमें रहकर अपने प्राण बचा। नहीं तो मैं तुझे समूल नष्ट किये देता हूं।" भगवान जिनेंद्रके वचनोंसे भयभीत हो फिर कामदेवने मोहसे पूछा--

"भाई मोह! अब क्या करना चाहिये ? जिनराजका तो जरा भी घमंड चूर नहिं होता।"

मोह--क्या बताऊं? आजतक ऐसा कोई मनुष्य ही न देखा जो आपकी आज्ञासे बाह्य हो परंतु जिनराजतो विलक्षण ही मनुष्य निकला। अच्छा कृपानाथ! आपकी कुल देवता त्रिभुवनविलासिनी

विद्या है आप उसका आराधन करें। आप निश्चय समझें वह अवश्य आपके संकटको काट देगी।" मंत्री मोहकी मंत्रणानुसार कामदेवने शीघ्र ही दिव्याशिनी नामकी विद्याका जोकि चंडीके समान भयंकर, तीनों लोकको हजम कर जानेवाली, देवेंद्रोंको भी कंपानेवाली, अद्भुत पराक्रमकी धारक और ब्रह्मा आदिसे भी दुर्जय थी शीघ्र ही स्मरण किया और वह भी कामदेवके सामने शीघ्र ही आकर खड़ी हो गई यह देख हाथ जोड़कर कामने उसकी प्रशंसा करते हुये कहा–

"भगवती विद्ये! तू समस्त लोकको जीतनेवाली है। अचिंत्य पराक्रमकी धारक, मान अपमान प्रदान करनेवाली और तीन भुवनकी स्वामिनी है। मा! मुझपर अचिंत्य कष्ट आकर पड़ा है। सिवाय तेरे कोई भी अब मेरा सहायक नहीं है अब तू मुझ पर कृपा कर और मेरा कष्ट निवारण कर।" कामदेवकी प्रार्थनासे कुलदेवता दिव्याशिनी प्रसन्न हो गई और उससे ऐसे बोली–

"प्रिय कामदेव! कहो क्या कार्य है? मुझ क्यों बुलाया।"

कामदेव--मा! राजा जिनेंद्र बड़ा ही घमंडी राजा है। मैं इसे हरि हर ब्रह्मा आदिके समान समझता था इसलिये उनके समान इसका भी जीतना मैंने सरल समझ लिया था परंतु यह वैसा न निकला। मेरी समस्त सेनाको छिन्न भिन्न कर इसने छक्के छूटा दिये। पूज्ये! हताश हो मैंने तेरा स्मरण किया है तू अब मेरी रक्षाकर मुझे विजयी कर दे। तू निश्चय समझ, तेरे जयसे मेरा जय और तेरे पराजयसे मेरा पराजय है यदि तेरा पराजय हो गया तो मैं नियमसे स्वदेशका परित्याग कर

दूगा।" इसप्रकार कामदेवके अधिक अनुनय विनय करनेसे कुलदेवी पसीज गई और "हा यह कोन वडी वात है।" कहकर समस्त पदार्थोंको भक्षण करती एव समुद्रोंके जलको पीकर सुखाती हुई वह भगवान जिनराजकी ओर चल दी। महाराज जिनराज भी सब प्रकारसे तयार थे ज्यों ही उन्होंने दिव्याशिनीको क्रुरतामे अपने ऊपर टूटता देखा उन्होंने शीघ्रही अध करणरूप वाणोंकी वर्षा करना प्रारम्भ कर दी। किंतु वार खाली गया पश्चात् वेला चान्द्रायणव्रत आदि वाण चलाये परतु तव भी दिव्याशिनीका जोर न घटा और वह जिनराजके पास आकर इसप्रकार कहने लगी—

"अरे जिन ! मुझे क्षीण करनेका यह क्या उपाय कर रहा है? तेरे सरीखे मनुष्यके ऐसे तुच्छ उपाय मेरा वाल भी बाका नहिं करसकते। वस अधिक कहनेकी आवश्यक्ता नहीं है अव अपने अभिमानका सर्वथा त्याग करदे और यदि शक्ति रखता हो तो मेरे साथ युद्ध कर।" उत्तरमें जिनेंद्रने कहा—

"री दिव्याशिनी ' तेरा कहना तो यथार्थ है परतु तेरे साथ युद्ध करनेमें मुझे लज्जा आती है क्योंकि यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं जो कातर स्त्रियोंके साथ युद्ध करें।"

वस जिनेंद्रका इतना कहना ही था कि दिव्याशिनी जलकर ख्याक होगई। उसने पृथ्वीसे लेकर आकाश पर्यंत अपना मुह फैलाया। वडी २ और भयकर डाढोंकी रचनाकी एव भैरव रूप धारणकर अट्टहास्य करती हुई भगवान [illegible] करने लगी।

रसपरित्याग पक्ष मास ऋतु छैमास और वर्षपर्यंत उपवासरूपी तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करना शुरू किया जिससे महाभयकर भी दिव्याशिनी देखते २ जमीनपर बेहोश हो गिरपडी।

इसप्रकार जब दिव्याशिनी भी रणमें काम आगई तब मोहने कामदेवसे कहा—

"कृपानाथ ! अब क्या देख रहे हैं ? अरे जिसकी प्रचड शक्ति ससारमें विख्यात थी वह दिव्याशिनी भी रणमें धराशायिनी होगई और अब तक स्वातिनक्षत्रमें श्वेत जलबिंदुओंके समान बराबर राजा जिनेंद्रकी बाणवर्षा हो रही है। स्वामिन् ! आप तो अब अपने प्राण बचाकर यहासे चले जाय। मैं थोडी देर तक इस जिनेंद्रके सैन्यके साथ युद्ध करूगा सभव है मेरे युद्धसे आपके अभीष्टकी कुछ सिद्धि हो जाय।"

राजा कामदेवका शरीर उससमय व्रतरूप बाणोंसे छिन्न भिन्न हो चुका था इसलिये वे स्वय पलायनका अवसर खोज रहे थे और इसी बीचमें मोहकी सम्मति भी मिल गई अब क्या था मोहके वचन सुनते ही वे विना कुछ आना कानी किये जिसप्रकार प्रचड पवनसे समुद्र चल विचल हो जाता है सिंहके भयसे गज और सूर्यके भयसे अधकार भग जाता है उसीप्रकार सग्रामके मैदानसे दौडकर जाने लगे। राजा कामदेवके चले जाने पर सुभट मोहने राजा जिनराजकी सेनाका सामना किया किंतु उसे पद पदपर स्खलित होना पडा। मोहकी वैसी दशा देख राजा जिनेंद्रने कहा—

"रे वराक मोह ! जा ! जा !! क्यों वृथा मृत्युकी बाट देख रहा है ? अब यहा तेरी कुछ चल नहिं सकती !"

मोहने उत्तर दिया "रे अल्प शक्तिके धारक जिन! क्यों वृथा आलाप कर रहा है? मेरे साथ थोड़ी देर युद्ध तो कर जिससे तुझे मेरी वीरताका पता लग जाय। अरे! ऐसी किसमें सामर्थ्य है जो मेरे जीते जी चक्रवर्ती महाराज कामदेवको विजय करले। नीतिकी वचन है कि भृत्य स्वामीके लिये अपने प्राणोंकी भी वलि देदे। मैं चक्रवर्ती राजा मकरध्वजका सेवक हूं इसलिये मैं उनकी सेवाके सामने अपने प्राणोंका कुछ भी मूल्य नहि समझता। वीर पुरुष रणमें मरनेसे भयभीत नहि होते क्योंकि रणमें यदि विजय हुआ तो वीरलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और कदाचित् मरण होगया तो वीरगतिका लाभ होता है।" इसप्रकार राजा जिनेंद्र और मोहका आपसमें वाद विवाद हो ही रहा था इतनेमें सुभट शुक्लध्यान मारे क्रोधके दांतोंको पीसता हुआ वीर मोहके सामने आ डटा और अपने चार भेदरूपी तीक्ष्णवाणोंसे उसे खड खड कर देखते देखते जमीनपर गिरा दिया। जब मोहकी सफाई होगई तो राजा जिनेंद्रकी सेनाके हर्षका पारावार न रहा। बडे जोरसे उसमें 'जय जय' का कोलाहल होने लगा एवं राजा जिनेंद्रने भय अपने विशाल सैन्यके राजा कामदेवका पीछा किया। ज्योंही राजा कामदेवने मय सेनाके राजा जिनेंद्रको अपने पीछे आता देखा उसके होश उडगये, मुख सूख गया। अगका प्रत्येक अवयव थर थर कापने लगा, उससमय न उसे स्मरण रहा और न चाप धनुष अश्व रथ हाथी और पदाति याद आये। जितनी जल्दी
गया, जब जिनराजने

है तो वे शुक्ल ध्यान उसे न देखले उसके पहिले ही उसके पास पहुँचे और घेरकर इसप्रकार बोले " रे काम ! इतनी शीघ्रतासे क्यों दौड रहा है ? क्या पुन माके पेटमें घुसना चाहता है ? याद रख ! कहीं भी तू चला जा अब बच नहिं सकता । अरे ! तू तो यह कहता था कि तीनों लोकमें मेरा कोई जीतनेवाला ही नहीं । ले ! अब मेरी चोट सम्हार ।" ऐसा कहकर शीघ्र ही धर्म्यध्यानरूपी बाणको धनुषपर चढा लिया और उसके वक्ष स्थलपर ऐसा आघात किया कि वह जिसप्रकार पवनके अघातसे विशाल वृक्ष, पख कटजानेसे क्रूरपक्षी और वज्रपातसे पर्वत जमीनपर गिर जाता है उसीप्रकार मूर्छित हो जमीनपर गिर गया । जब कामदेव धराशायी हो गया तो चारो ओरसे जिनराजकी सेनाने उसे घेर लिया और जजीरोंसे जिकड डाला । कुछ समयबाद जब कामकी मूर्छा जागी तो अपनी भयकर दशापर उसे नितात दु ख हुआ और मनही मन वह यह सोचने लगा-

पूर्व जन्म कृत पुण्यका फल, होत है उदित जीवके ध्रुव ।
नीतिविज्ञ जनकी सुनीति जो दीखती सकल सत्य आज सो॥

अर्थात्-पूर्व जन्ममें किये हुये कर्मोंका फल अवश्य प्राणियोंको भोगना पडता है ऐसा जो नीतिकारोंका उपदेश है वह यथार्थ है और आज वह खुलासारूपसे देखनमें आ रहा है ।"

प्रत्येक मनुष्यके स्वभाव विलक्षण हुआ करते हैं जब बलवानोंका भी मान दलन करनेवाला राजा काम जिनराजसे हार

पूर्वजन्मकृतकर्मण फल पाकमेति नियमेन दहिना ।
नीतिशास्त्रनिपुणा वदति यद् दृश्यते तदधुनात्र सत्यवत् ॥

गया और उनके अंटेमें फंस गया तो जिनराजकी सेनाके बहुतसे वीर कहने लगें इस नीचको प्राणरहित कर देना चाहिये, कोई कहने लगा इसे शिर मूडकर गधेपर चढाना चाहिये और अनेकोंने यह कहा–इस पापात्माको चारित्रपुरमे बाहर जाकर शूलीपर चढा देना चाहिये ऐसे बलवान अन्यायीका जीना अधिक भयका देनेवाला होगा। इसप्रकार जिनराजकी सेनाके वीरोंका तो यहांपर यह मत्त आलाप हो रहा था और उधर रति और प्रीतिको स्वामी कामदेवके असली हालका पता लगा जिससे मारे भयके वे थर थर कापने लगीं और शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके पास आकर विनयपूर्वक निवेदन करने लगीं–

"हे मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी! भव्यरूपीकमलोंके लिये सूर्य! चिंतित पदार्थोंको प्रदान करनेवाले चिंतामणि! चारित्रनगरके रक्षक! देव! हमें विधवा न करो, करुणाकर हमारा सौभाग्य ज्यों-का त्यों बना रहने दो। यद्यपि संसारमें यह कहावत चरितार्थ है कि सज्जनकी रक्षा और दुर्जनका नाश करना चाहिये इसलिये अवश्य हमारा स्वामी तुम्हारे द्वारा मारने योग्य है तथापि हम-पर करुणाकर इससमय तो क्षमा करदेना ही उचित है। भग-वन्! हमने अपने स्वामीको बहुत समझाया था परंतु उसने नहिं माना उसका फल पा लिया। अब आपको इसके मारनेसे ही क्या लाभ? इसकी तो शक्ति क्षीण हो ही गई।" रति और प्रीतिके करुणापरिपूर्ण वचन सुन भगवानका हृदय दयासे गद्गद् हो गया इसलिये वे उनसे

महानीच और दुष्ट है। इसके प्राणरहित होनेपर ही कल्याण हो सकता है परंतु खेर तुम लोगोंकी ओर देखनेसे इसे मारा तो नहिं जायगा परंतु हां इसे देशपरित्याग जरूर करना पड़ेगा, ऐसा पापी अब हमारे देशमें नहिं रह सकता।"

रति और प्रीति-भगवन्! आपकी आज्ञा प्रमाण है। पर हमें स्वदेश विदेशका ज्ञान होना चाहिये।

जिनराज (कुछ हँसकर) इस नीचको हमारे देशकी सीमाका कभी उल्लंघन न करना होगा।

रति और प्रीति-भगवन्! यही तो पूछना है कि आप के देशकी सीमा कहातक है! कृपाकर हमें एक सीमापत्र लिख कर देदीजिये।" राजा जिनेंद्रने रति और प्रीतिका वचन स्वीकार कर लिया और पत्र लिखनेकेलिये दर्शनवीरको आज्ञा देनेपर उसने शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत नवग्रैवेयक विजय वैजयंत जयंत अपराजित सर्वार्थसिद्धि और सिद्धशिलाको स्वदेश रख लिया और यदि इन स्थानोंपर कामदेव प्रवेश करेगा तो अवश्य उसे प्राणघातका दंड भोगना पड़ेगा अन्यत्र वह कहीं रहे हमारा उसमें कोई प्रतिरोध नहीं, ऐसा सीमापत्र लिखकर रति और प्रीतिके हाथमें देदिया। सीमापत्रको प्राप्त कर रति प्रीति फिर बोलीं-

स्वामिन्! यह सीमा हमें मंजूर है परंतु कतिपय देशतक हमें पहुंचा आवे ऐसा कोई आप अपना नौकर दीजिये।" रति के वचनोंसे प्रेरित हो राजा जिनराजने धर्म आचार क्षम क्षमा नम तप तत्त्व दया प्रायश्चित मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मन

पर्ययज्ञान शील निर्वेग उपशम सुलक्षण सम्यग्दर्शन संयम स्वाध्याय ब्रह्मचर्य धर्म्यध्यान शुक्लध्यान गुप्ति मूलगुण निर्ग्रंथ अपूर्व और केवलज्ञान आदि जितने सुभट थे सबको इकट्ठा किया और कहा--

"राजा कामको देश निकाला दिया गया है। आप लोगोंमें कौन सुभट उसे कुछ दूर तक जाकर पहुंचा सकता है।" राजा जिनेंद्रके ऐसे वचन सुन किसीने कुछ उत्तर न दिया। सबके सब मौन साधगये एवं सभाभवनमें एकदम सन्नाटा छा गया। जब जिनेंद्रने देखा कि सबकी बोलती बंद है तो वे शांतिवचनोंमें इस प्रकार कहने लगे--

"अरे वीरो! यह क्या कारण है जो आप सब लोगोंने मौन धारण करलिया है। सबके सब मूक होकर बैठे हुये हो। बतलाओ तो सही, तुम्हारे मनमें ऐसा कौनसा भयंकर भय पैठ गया है जो बोलनेमें प्रतिबंध डालता है? क्या तुमको कामदेवसे भय लगता है? अरे उसका घमंड तो मैंने चूर चूर कर डाला। अब तो उसमें यह भी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हारी ओर आंख उठाकर भी देख सके इसलिये तुम्हारा उससे इतना भयभीत होना नितांत अयुक्त है। तुम निश्चय समझो जिसप्रकार विषके विना सांप, दांतोंके विना हाथी, नखोंके विना सिंह, सेनाके विना राजा, शस्त्रके विना शूर वीर, डाढ़ोंके विना शूकर, विना नेत्रोंके बाघ, विना गुण (डोरा) के धनुप और विना सींगोंके भैंसा, कुछ भी नहिं कर सकता उसीप्रकार विना वीरताके काम भी कुछ नहिं कर सकता मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे उसकी शूरता लापता होगई है।' भगवानके इस उन्नत उपदेशको सुनकर सुभट शुक्लध्यानसे न रहागया वह

तत्काल भगवानके पास आकर खडा होगया और प्रणामकर बोला

"भगवन्! कामदेवके साथ जानेकेलिये मैं तयार हू आप मुझे आज्ञा दीजिये। परतु इतना निवेदन है कि जब आप सर्वज्ञ है, ससारके स्थूल सूक्ष्म सब प्रकारके पदार्थ आपकी आत्मामें प्रकाशमान हैं तब इस बातका जानकर भी राजा कामके जीते रहनेमें ससारका कल्याण नहि हो सकता यह नीच सधिका भगकर पुन उपद्रव अवश्य करैगा' तब आप इसैं जीता क्यों छोडते हैं? क्यों नहीं इस नीचकी मूलसे सफाई कर देते। यह मुझे तो आपका न्याय युक्तियुक्त प्रतीत नहि होता।

जिनराज-भाई शुक्लध्यान! तुम्हारा कहना यथार्थ है परतु शरणमें आये हुये वैरीको भी न मारना राजाका धर्म है यह नीतिशास्त्रका उपदेश है। और जो बात हमको अभीष्ट थी वह कामदेवके निस्तेज होनेपर सिद्ध होचुकी इसलिये तुम्ही बताओ इसका मारना युक्त है वा अयुक्त? मेरी आज्ञा है कि कामदेवको जीवित रखकर देशसे बहिष्कृत करदेना चाहिये। तुम इसबातसे मत डरो कि यह पुन उपद्रव करैगा क्योंकि अब इसमें ऐसी सामर्थ्य नहीं जो फिरसे कुछ उपद्रव करसके। कदाचित् इसका उपद्रव सुना भी जायगा तो फिर इसको उचित ही दड दिया जायगा।" भगवान जिनेंद्रका यह वाद विवाद रति और प्रीति भी सुन रहीं थी ज्योंही उन्होंने अपने विषयमें शुक्लध्यानकी प्रकृतिको क्रूर जाना और यह सुनकर कि यही हमैं पहुचाने जायगा मारे भयके वे थर थर कापने लगीं और भगवानके चरणोंमें गिरकर नम्रतापूर्वक बोलीं-

भगवन्! सुभट शुक्लध्यानका विचार हमारे विषयमें अच्छा नहीं, ऐसा पुरुष हमें मार ही डाले तो क्या भरोसा ? क्योंकि–

आकृति इंगित हास्य अरु भाषण विविध स्वरूप ।
मुख अरु नेत्र विकार भी कहते मनका रूप ॥

अर्थात् शरीरके आकारसे इशारे चेष्टा बोली और मुख एवं नेत्रके विकारसे मनके भीतरी भावका पता लग जाता है। इसलिये किसी अन्यको जानेकी आज्ञा दीजिये तो बडी ही कृपा हो।

जिनराज (कुछ हसकर) नहि रति, तुम्हे किसीप्रकारका भय न करना चाहिये। तुम निश्चय समझो वीर शुक्लध्यान कभी ऐसा नहिं करसकता ? क्या तुम्हें यह सर्वथा विश्वास है कि मेरी आज्ञा विना लिये ही शुक्लध्यान तुम्हें मार डालेगा ?" इसप्रकार रति और प्रीतिको अपने वचनोंमे पूरा पूरा विश्वास कराकर भगवान जिनेंद्रने इन्हे शुक्लध्यानके साथ भेज दिया और वे राजा कामदेवके पास जाकर बोलीं–

"कृपानाथ ! तुम्हारी रक्षाके लिये हमने बडे २ अनुनय विनय कर भगवान जिनेंद्रको बडी कठितासे राजी कर पाया है। आप निश्चय समझें यदि हम भगवान जिनेंद्रके पास जाकर आपके लिये निवेदन न करतीं और उससे उनके हृदयमें अनुकंपा प्रसार न होता तो आप अवश्य प्राणरहित हो जाते भगवान जिनेंद्रने आपके मारनेका पूरा पूरा विचार करलिया था। वे आपको कभी छोड नहि सकते थे। भगवान जिनेश्वरने वीर दर्शनमे लिखाकर यह सीमापत्र दिया है आप इसे लें बांचें और इसकी आज्ञानुसार

१ आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ।

चलें। हमारा निवेदन है कि भगवान जिनेंद्रने जो कुछ सीमा बाध दी है-जिन २ प्रदेशोंमें हमें रहनेकी आज्ञा दी है उन्हीं प्रदेशोंमें चलें और वहापर सुखसे रहें। नाथ! अब आपको जिनेंद्रकी आज्ञा स्वीकार करनी ही पडेगी। अब आपमें यह सामर्थ्य नहिं रही जो आप उनके विरुद्ध पथमें कुछ भी करसकें। भगवान जिनेंद्रने कुछ प्रदेशोंतक पहुचानेकेलिये सुभट शुक्लध्यानको भी भेजा है इसलिये आपको चलना ही होगा अब आप किसी बहानेसे यहा नहिं रह सकते।" रति और प्रीतिके ऐसे वचन सुन राजा काम क्षण भरकेलिये बुद्धिशून्य हो गये। कुछ समय पहिले जो उनका अहंकार पूर्णरूपसे लहलहा रहा था इससमय सर्वथा किनारा करगया उनके मनमें अब सहसा विकल्प उठने लगे

हाय अब तो बडी कठिन अटकी। इससमय क्या करना चाहिये क्या न करना चाहिये कुछ सूझ नहीं पडता, शुक्लध्यानका हमारे साथमें रहना अच्छा नहीं। यह भयंकर सुभट है यदि इसने मुझे देख पाया तो जीवित नहिं छोड सक्ता मुझे शुक्लध्यानकी ओर से कभी विश्वास नहिं हो सक्ता। अरे!

दुर्बल भी विश्वासरहित नर आते नहिं बल्पतके कों कर।
अति बलिष्ठ भी विश्वासी जन, रहते निबलोंके गुलाम बन॥

अर्थात् अविश्वासी दुर्बलोंको भी बल्वान नहिं बाध सक्ते और विश्वासी बल्वानोंको भी दुर्बल बाध लेते हैं जब यह नीति प्रसिद्ध है तब शुक्लध्यानका कैसे विश्वास किया जाय कि यह मुझे

[1] न बध्यंते ह्यविश्वस्ता दुर्बला बलवत्तरैः।
विश्वस्ताश्चाशु बध्यंते बलवंतोऽपि दुर्बलैः॥

छोड़ ही देगा, इसप्रकार अधिक पश्चाताप न कर उसने अपने शरीरको सर्वथा नष्ट कर दिया और अनंग हो युवतियोंकी हृदय गुफामें जहां कि उसने अपना पता लगना भी दुस्साध्य समझा प्रविष्ट होगया।

इसप्रकार श्रीठक्कुरमाइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मदनपराजयकी भाषावचनिकामें मकरध्वजके पराजयका वर्णन करनेवाला चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चम परिच्छेद ।

जिससमय इंद्रने यह देखा कि महा अभिमानी कामदेव पौरुषहीन हो चुका है और शरीरको सर्वथा त्यागकर अनंग हो युवतियोंकी हृदय गुफामें मारे भयके प्रविष्ट हो गया है तो उसने प्रसन्न होकर शीघ्र ही दूती दयाको अपने पास बुलाया और उसे यह आज्ञा दी—

"अरी दया ! तू अभी मोक्षपुर जा । वहां राजा सिद्धसेनसे यह कहना कि विवाहका समय बिलकुल समीप आ पहुंचा है इसलिये आप अपनी पुत्री मुक्तिको संग लेकर शीघ्र ही मेरे साथ चलिये ।" स्वामी इंद्रकी आज्ञासे दूती दया शीघ्र ही मोक्षपुर पहुंची और वहां सिद्धसेनके साथ उसके इसप्रकार उत्तर प्रत्युत्तर होने लगे—

सिद्धसेन—अरे तू कौन है ?

दया—श्री महाराज ! मुझे दया कहते हैं ।

सिद्धसेन—किसने तुझे यहां भेजा है ?

दया-इद्रने।

सिद्धसेन-किस कार्यकेलिये ?

दया-विवाहार्थ मय मुक्तिकन्याके आपको बुलानेकेलिये।

सिद्धसेन-विवाहके लिये ? अच्छा यह बताओ, जिस वीरके साथ मेरी कन्याका विवाह होगा वह कैसा है उसका कुल गोत्र और रूप कैसा है और कितनी उसके शरीरकी उचाई है ?

दया-श्रीमहाराज ! जिस युवाके साथ आपकी कन्याका विवाह होनेवाला है उसके रूप नाम गुण गोत्र और लक्षण पूछनेकी क्या आवश्यक्ता है ? यदि आप रूप आदि जान भी लेंगे तो क्या करेंगे ?

सिद्धसेन-दया ! दूती होकर भी तू बावली है अरी ! जो पुरुष युवा सुदर उत्तमदेशका रहनेवाला, देव शास्त्र और गुरुओंका भक्त, प्रकृतिका सज्जन होता है वही पुरुष उत्तम माना जाता है। शीलवान, धनी, उत्तम गुणोंके भंडार, शात मूर्तिके धारक, उद्योगीको ही कन्याका पति बनाना चाहिये। इसलिये ऐसाही पुरुष मेरी कन्याके साथ विवाह करनेका अधिकारी हो सक्ता है अन्य नहीं।

दया-अच्छा महाराज ! यदि आप वरका नाम ग्राम ही पूछना चाहते हैं तो मैं कहती हू आप सुने जिस पुरुषके साथ आपकी कन्याका विवाह होनेवाला है वह चौदहवे कुलकर महाराज नाभिका पुत्र है उसका नाम ऋषभ देव, गोत्र तीर्थंकर, रूप अद्भुत-तपेहुये सुवर्णके समान और वक्षस्थल विशाल है एव वह सबका प्रिय , एकहजार आठ लक्षणोंका धारक, चौरासी गुणोंसे

उ, अविनाशी संपत्तिका धारक, कर्णपर्यंत लंबे कमलके समान नेत्रोंसे भूषित, घोटूपर्यंत लंबी भुजाओंसे युक्त, और पांचसौ धनुष ऊंचे शरीरका है।" इसप्रकार दूती दयाके मुखसे ज्योंही महाराज सिद्धसेनने भगवान जिनेंद्रके रूप आदिकी प्रशंसा सुनी और हर्षसे उनका हृदय गद्गद हो गया और वे इसप्रकार कहने लगे-

'दया! भगवान जिनेंद्रके साथ मुझे अपनी कन्याका विवाह मंजूर है तू इंद्रके पास जा और उससे यह कहदे कि-

"यमराजके मंदिरमें कर्मरूपी धनुष रक्खा है उसे लेकर महाराज सिद्धसेन अपनी कन्या मुक्तिके साथ आरहे हैं और वे स्वयंवरमार्गसे अपनी कन्याका विवाह करेंगे इसलिये उनके पहिलेही स्वयंवर भूमिकी रचना हो जानी चाहिये।" राजा सिद्धसेनके वचनोंसे दूतीको बड़ा हर्ष हुआ। वह शीघ्र ही मोक्षपुरसे चलकर इंद्रके पास आई और जो कुछ महाराज सिद्धसेनका संदेशा था सारा आकर कह सुनाया। दयाके वचन सुनकर संतुष्ट हो इंद्रने शीघ्र ही कुबेरको बुलाया और उसे यह आज्ञा दी-

'कुबेर! महाराज सिद्धसेनने अपनी कन्या मुक्तिका भगवान जिनेंद्रके साथ विवाह करना मंजूर कर लिया है परंतु उनका आग्रह है कि विवाह स्वयंवर मार्गसे ही होना चाहिये और वे चले आरहे हैं। इसलिये तुम शीघ्र ही समवसरणरूप स्वयंवर भूमिकी रचना कर दो।" इंद्रकी आज्ञानुसार कुबेरने बारह योजनके मध्यमें समवसरण बनाया और उसमें बीस हजार सोपान, झाडी कलश ध्वजा चमर छत्र दर्पण स्तंभ गलिया निधि मार्ग तलाब लता बगीचे धूपघट तोरणद्वार महल चैत्यालय

कल्पवृक्ष नाट्यशाला और आठ गोपुर आदि यथास्थान रच कर तैयार कर दिये। समवसरणमें बारह सभाओंका भी निर्माण किया गया और उनमें विद्याधर देव मनुष्य उरग किन्नर गंधर्व फणींद्र चक्रवर्ती और यक्ष आदि भी अपने अपने स्थान पर आकर बैठ गये। इसप्रकार जिससमय स्वयंवरस्थल समवसरण बनकर तयार होगया तो उससमय आस्रवोंने कृष्ण नील कापोतलेश्यारूप नाना प्रकारके वर्णोंसे चित्र विचित्र आशारूपी गुणसे युक्त धनुष यम राजके घरसे लाकर सहसा देव मनुष्य आदिके सामने रख दिया और उसीसमय कमनीयरूपसे शोभित, स्वच्छस्फटिकके समान कांतिमान शरीरको धारण करनेवाली, रत्नत्रयरूप तीन रेखाओंसे जाज्वल्यमान कंठसे शोभित, चंद्रवदनी और नीलकम-लके समान विशाल रमणीय नेत्रोंको धारण करनेवाली मुक्तिकन्या भी हाथमें तत्त्वरूप वरमालाको लेकर स्वयंवरमंडपमें आ विराजी। जब इंद्रने देखा कि धनुष और कन्या दोनों आगये विवाहका समय समीप है तो वह उठकर खडा होगया और सभाके मनु-ष्योंसे इसप्रकार कहने लगा--

"सुनो भाई शूरवीरो! कन्याके पिता महाराज सिद्धसेनकी आज्ञा है कि जो पुरुष सब लोगोंके सामने इस कर्मधनुषको तोड कर डालेगा वही कन्या मुक्तिका पति समझा जायगा-उसीके साथ उसका विवाह होगा। इसलिये जो महाशय मुक्तिके साथ विवाह करनेके इच्छुक हों वे इस धनुषको तोड डालनेका प्रयत्न करें।" ज्योंही इंद्रके मुखसे राजा सिद्धसेनकी यह आज्ञा सुनी सब लोगोंके छके छूट गये और मन ही मन यह विचारकर

कि कन्या तो अनुपम सुंदरी है इसके साथ विवाह करना भी ठीक है परंतु कर्म धनुषको कौन तोडे सबके सब अवाक् रहगये-किसीके मुखसे कुछ भी वचन न निकले सभा भवनमें एकदम सन्नाटा छागया और एक दूसरेका मुख देखने लगे। भगवान जिनेंद्र पूर्ण जितेंद्रिय महामनोहर, समस्त लोकके ईश्वर, सदा शांत मूर्तिके धारक, ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ, दिगंबर, पवित्र शरीरके धारक, संसाररूप समुद्रके पार करनेवाले, अनंत वीर्य गुणके धारक, पंच कल्याणरूप विभूतिसे विभूषित, कुछ सुर्खाईकोलिये हुये कमलके समान नेत्रोंसे युक्त, पाप मल खेद आदिसे रहित, तपके भंडार, क्षमा और दया गुणके धारण करने वाले, समाधिमें लीन, तीन छत्रोंसे शोभित, भामंडलसे देदीप्यमान, समस्त देवोंके देव, बडे २ मुनियोंसे वंदित, समस्त वेद और शास्त्रोंके पारगामी, निरंजन और अविनाशी थे। जिससमय उन्होंने देखा कि सभामें सन्नाटा छा रहा है-कोई भी राजा सिद्धसेनकी आज्ञाका पालन करना नहिं चाहता तो वे एकदम सिंहासनसे उठ धनुषके सामने आकर खडे होगये। धनुषको हाथमें ले लिया और कान तक चढा देखते २ उसे तोड डाला। ज्योंही धनुष टूटा उसका बडा भयंकर शब्द हुआ उसके दिग्व्यापी नादसे पृथ्वी कंपगई, सागर पर्वत चल विचल हो उठे और स्वर्गमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिक देव मूर्च्छित होगये। जब कन्या मुक्तिने देखा कि महाराज अनुपम गुणोंके भंडार हैं मेरे पिताकी आज्ञानुसार इन्होंने धनुष भी तोड डाला है तो वह शीघ्र ही उठी और तत्त्वरूप वरमालाको लेकर नाभिके पुत्र तीर्थंकर ऋषभ देवके गलेमें डाल कृतकृत्य होगई।

के पडते ही स्त्रिया मगल गान गाने लगीं। चारों निकायके देव आकर उपस्थित होगये। सिंह महिष ऊट अष्टापद द्वीपी बैल मकर वराह व्याघ्र गरुड पक्षी हाथी वन हस चकवाक गैंडा गरुड गवय घोडा और सारस आदि अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार षोडश आभरणोंसे भूषित शरीरके धारक, पवनसे कपित ध्वजा और आतपत्रोंसे भूषित, अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाका भी तिरस्कार करनेवाले मुकुटसे जाज्वल्यमान, भांति २ के दिव्य शस्त्रोंसे भूषित, परिवारके मनुष्य और स्त्रियोंसे मडित, उच्चस्वरसे मनोहर स्तुति और नृत्य गीत करनेवाले, भेरी मृदग पटह आदि उत्तमोत्तम बाजोंसे समस्त आकाश मडलको बधिर करनेवाले और परस्पर वाहन विमान हाथ पैर और शरीरके सघर्षणसे टूटे हुये मोतियोंसे समस्त भूमडलको व्याप्त करनेवाले अन्य अन्य भी अनेक देव 'जय जय' शब्द करते हुये वहा आगये। श्री ह्री कीर्ति सिद्धि नि स्वेदता निर्जरा वृद्धि बुद्धि अशल्यता बोधि समाधि प्रभा शांति निर्मलता प्रणीति अजिता निर्मोहता भावना तुष्टि पुष्टि अमूढदृष्टि सुन्दला स्वात्मोपलब्धि, निश्शका अत्यतमेधा विरति मति धृति क्षाति अनुकृशा इत्यादि देविया भी जो नानाप्रकारके भुजबधोंसे शोभित चन्द्रवदनी और नानाप्रकारके चित्र विचित्र मोतियोंके बने हुये हारोंसे युक्त वक्षस्थलोंसे मडित थीं शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके विवाहकी खुशीमें मगल गान करनेकेलिये आगईं।

भगवान जिनेद्र अपनी हृदयहारिणी मुक्ति भार्याके साथ मनोरथरूपी विशाल हाथीपर सवार होगये। इद्र और देवोंने पुष्प

शृंगि की, दया आदि स्त्रियोंने भगवानको समस्त आभरण पहिनाये, सरस्वती मगल गान करने लगीं और देवोंने मृदग भेरी आदिके उन्नत शब्द किये। उससमय केवलज्ञानरूपी देदीप्यमान अविनाशी राज्यके स्वामी जिनेंद्रकी यात्रा समस्त लोकमें अनुपम थी, जिससमय चारों निकायोंके देवोंसे वदनीक अनेक प्रकारकी पवित्र २ स्त्रियोंके द्वारा गाई गई कीर्तिके भडार अत्यन्त ज्वलत दीप्तिसे व्याप्त भामडलसे विभूषित, बडे २ ऋषि महर्षियोंसे स्तुत, अनेक यक्षोंसे ढोलेगये चमरोंसे वीजित और तीन छत्रोंसे शोभित परमेश्वर ऋषभदेव मोक्षपुरके मार्गसे जाने लगे उससमय सयम श्री और तपश्रीमें इसप्रकार वार्तालाप होने लगा—

सयमश्री—प्यारी सखी तपश्री! क्या नहिं देखती। नानाप्रकारके महोत्सवोंसे भूषित महाराज जिनेंद्र अब कृतकृत्य हो चुके ससारमें जो कुछ कार्य करने थे सब कर चुके और कोई कार्य अब इन्हें करनेकेलिये अवशिष्ट नहिं रहा। यद्यपि इन्होंने दुष्ट कामदेवको विध्वस्तकर डाला है परतु इसबातका भय है इनके मोक्ष चले जानेके बाद वह दुष्ट फिर चारित्रपुरपर धावा न करे और वहाकी प्रजाको सताप न दे इसलिये राजा जिनेंद्रके पास जाकर तू यह सब निवेदन करदे जिससे वे चारित्रपुरका उचित प्रबध कर जाय कामदेव फिर आकर चारित्रपुरके निवासियोंको सकट जालमें न डाल सके।

तपश्री—प्यारी सखी सयमश्री! तुमने ठीक कहा। हम लोग भी तो चारित्रपुरके ही रहनेवाले हैं अवश्य दुष्ट कामदेव चारित्रपुरमें आकर उपद्रव करेगा इसमें कोई सदेह नहीं इसलिये

यह निवेदन अवश्य भगवान जिनेंद्रसे करनेके लायक है।" इस प्रकार दोनो सखी परस्पर सम्मति कर शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके सामने पहुची और उनसे हाथ जोडकर बोली–

"पवित्र मूर्तिके धारक! तीन भुवनमें विख्यात कीर्तिसे भूषित! तपनीय सुवर्णके समान मनोहर! राग द्वेष आदि दोषोंको जडसे नष्ट करनेवाले! श्री भगवान! आपके चरणकमलोंमें एक विनय है आप उसे अवश्य सुनें–

भगवन्! आप कृतकृत्य होकर मोक्ष जा रहे हैं अब आपको न किसीसे राग रहा न द्वेष। दुष्ट कामदेव बडा क्रूर है। आपने उसे वश कर डाला है–सिवाय आपके वह किसीसे भय नहिं करता। जब वह यह सुनेगा कि आप चारित्रपुरको छोडकर मोक्ष चले गये तो वह अवश्य चारित्रपुरपर धावा करेगा। हमें अवश्य नाना प्रकारके कष्ट देगा और आपके पीछे हमारी कौन रक्षा करेगा? इसलिये अपने सामने ही सर्वथा हमारी रक्षाका उपाय कर जाय।" तपश्रीके वचन सुन राजा जिनेंद्रने स्वीकार कर लिया और गणधर वृषभसेनको जो समस्त शास्त्रके समुद्र थे। सज्जनोंको आनद प्रदान करनेवाले चद्रमा, कामरूप मृगकेलिये सिंह, दोषरूप दैत्यकेलिये इद्र, समस्त मुनियोंमें जिनेंद्र, कर्मोंको सर्वथा विध्वस करनेवाले, कुगतिके नाशक, दया और लक्ष्मीके स्थान, ससारके विध्वस करनेवाले, याचकोंकी आशा पूरण करनेमें कल्पवृक्ष, समस्त गणधरोंके स्वामी और सम्यग्ज्ञानरूपी दीपकके धारक थे शीघ्र ही अपने पास बुलाया और "वृषभसेन! हम तो अब मोक्षपुरको जाते हैं तुम्हें समस्त गुण महाव्रत दया क्षमा

आदि धारण करने चाहिये और चारित्रपुरमें रहनेवाले समस्त मनुष्योंकी प्रतिपालना करनी चाहिये" ऐसी उन्हें आज्ञा दे तथा समस्त जीवोंको सबोधकर मोक्षपुरकी तरफ रवाना हो वहा पहुच गये ।

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित सस्कृत
मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें मुक्तिके स्वयवरका
वर्णन करनेवाला पचम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥५॥

समाप्त ।

यह निवेदन अवश्य भगवान जिनेंद्रसे करनेके लायक है।" इस प्रकार दोनो सखी परस्पर सम्मति कर शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके सामने पहुंची और उनसे हाथ जोडकर बोलीं–

"पवित्र मूर्तिके धारक! तीन भुवनम विख्यात कीर्तिसे भूषित! तपनीय सुवर्णके समान मनोहर! राग द्वेष आदि दोषोंको जडसे नष्ट करनेवाले! श्री भगवान! आपके चरणकमलोंमें एक विनय है आप उसे अवश्य सुनें–

भगवन्! आप कृतकृत्य होकर मोक्ष जा रहे हैं अब आपको न किसीसे राग रहा न द्वेष। दुष्ट कामदेव बडा क्रूर है। आपने उसे वश कर डाला है–सिवाय आपके वह किसीसे भय नहिं करता। जब वह यह सुनेगा कि आप चारित्रपुरको छोडकर मोक्ष चले गये तो वह अवश्य चारित्रपुरपर धावा करैगा। हमें अवश्य नाना प्रकारके कष्ट देगा और आपके पीछे हमारी कौन रक्षा करैगा? इसलिये अपने सामने ही सर्वथा हमारी रक्षाका उपाय कर जाय।" तपश्रीके वचन सुन राजा जिनेंद्रने स्वीकार कर लिया और गणधर वृषभसेनको जो समस्त शास्त्रके समुद्र थे। सज्जनोंको आनद प्रदान करनेवाले चद्रमा, कामरूप मृगकेलिये सिंह, दोषरूप दैत्यकेलिये इद्र, समस्त मुनियोंमें जिनेंद्र, कर्मोंको सर्वथा विध्वस करनेवाले, कुगतिके नाशक, दया और लक्ष्मीके स्थान, ससारके विध्वस करनेवाले, याचकोंकी आशा पूरण करनेमें कल्पवृक्ष, समस्त गणधरोंके स्वामी और सम्यग्ज्ञानरूपी दीपकके धारक थे शीघ्र ही अपने पास बुलाया और "वृषभसेन! हम तो अब मोक्षपुरको जाते हैं तुम्हें समस्त गुण महाव्रत दया क्षमा

ादि धारण करने चाहिये और चारित्रपुरमें रहनेवाले समस्त मनुष्योंकी प्रतिपालना करनी चाहिये" ऐसी उन्हें आज्ञा दे तथा भव्य जीवोंको सबोधकर मोक्षपुरकी तरफ रवाना हो वहा पहुच गये ।

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित सस्कृत
मदनपराजयकी भाषावचनिकामें मुक्तिके स्वयवरका
वर्णन करनेवाला पचम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥५॥

समाप्त ।

यह निवेदन अवश्य भगवान जिनेंद्रसे करनेके लायक है।" इस प्रकार दोनो सखी परस्पर सम्मति कर शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके सामने पहुंची और उनसे हाथ जोडकर बोली–

"पवित्र मूर्तिके धारक! तीन भुवनमें विख्यात कीर्तिसे भूषित! तपनीय सुवर्णके समान मनोहर! राग द्वेष आदि दोषोंको जडसे नष्ट करनेवाले! श्री भगवान! आपके चरणकमलोंमें एक विनय है आप उसे अवश्य सुनें–

भगवन्! आप कृतकृत्य होकर मोक्ष जा रहे हैं अब आपको न किसीसे राग रहा न द्वेष। दुष्ट कामदेव बडा क्रूर है। आपने उसे वश कर डाला है–सिवाय आपके वह किसीसे भय नहिं करता। जब वह यह सुनेगा कि आप चारित्रपुरको छोडकर मोक्ष चले गये तो वह अवश्य चारित्रपुरपर धावा करेगा। हमें अवश्य नाना प्रकारके कष्ट देगा और आपके पीछे हमारी कौन रक्षा करेगा? इसलिये अपने सामने ही सर्वथा हमारी रक्षाका उपाय कर जाय।" तपश्रीके वचन सुन राजा जिनेंद्रने स्वीकार कर लिया और गणधर वृषभसेनको जो समस्त शास्त्रके समुद्र थे। सज्जनोंको आनंद प्रदान करनेवाले चद्रमा, कामरूप मृगकेलिये सिंह, दोषरूप दैत्यकेलिये इंद्र, समस्त मुनियोंमें जिनेंद्र, कर्मोंको सर्वथा विध्वंस करनेवाले, कुगतिके नाशक, दया और लक्ष्मीके स्थान संसारके विध्वंस करनेवाले, याचकोंकी आशा पूरण करनेमें कल्पवृक्ष, समस्त गणधरोंके स्वामी और सम्यग्ज्ञानरूपी दीपकके धारक थे शीघ्र ही अपने पास बुलाया और [illegible]। हम तो अब मोक्षपुरको जाते हैं तुम्हें समस्त

आदि धारण करने चाहिये और चारित्रपुरमें रहनेवाले समस्त मनुष्योंकी प्रतिपालना करनी चाहिये" ऐसी उन्हें आज्ञा दे तथा समस्त जीवोंको संबोधकर मोक्षपुरकी तरफ रवाना हो वहां पहुच गये ।

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुन जिनदेवद्वारा विरचित सस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें मुक्तिके स्वयवरका वणन करनेवाला पचम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥५॥

समाप्त ।